मण्डल प्रकाशन - 60

ज्ञातासूत्र की कथाएँ

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

मण्डल प्रकाशन - 60

ज्ञातासूत्र की कथाएँ

दीपचन्द संचेती

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

सुबोध बॉयज सीनियर सैकण्डरी स्कूल के ऊपर,

बापू बाजार, **जयपुर-302003** (राजस्थान)

फोन : 0141-2575997

कृति : **ज्ञातासूत्र की कथाएँ**

पंचम संस्करण : 2022

मुद्रित प्रतियाँ : 500

मूल्य : **20/-** (बीस रुपये मात्र)

इस संस्करण के अर्थसहयोगी :

स्व. श्री मदनराजजी भण्डारी, देवनगर–जोधपुर
की पावन–स्मृति में भण्डारी परिवार की ओर से

लेज़र टाइप सैटिंग :
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

मुद्रक : इण्डियन मैप सर्विस, जी-सेक्टर, शास्त्री नगर, जोधपुर

ज्ञातासूत्र की कथाएँ

दीपचन्द संचेती

अन्य प्राप्ति-स्थल :

❒ **श्री धीरजजी डोसी**
श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ
सामायिक स्वाध्याय भवन, प्लॉट नं.2,
कुम्हार छात्रावास के सामने, नेहरु पार्क,
जोधपुर-342001(राजस्थान)
फोन : 0291-2624891,
मोबाइल: 09462543360

❒ **श्री पदमचन्द कोठारी**
7 बी, 'सत्व', श्रेयस को.आ. स्टोर के सामने, नारायण नगर रोड़, शान्तिवन, पालड़ी, **अहमदाबाद-380007** (गुजरात)
मोबाइल : 9429303088

❒ **श्री नवरतन भंसाली**
द्वारा: महेश इलेक्ट्रिकल्स, 14/5, बी.वी.के. अयगंर रोड़, **बेंगलुरु-560053** (कर्नाटक)
मोबाइल : 09844148943

❒ **श्री प्रकाशचन्द सालेचा**
16/62, चौपासनी हाउसिंग बोर्ड, **जोधपुर-342003** (राजस्थान)
मोबाइल : 9461026279

❒ **श्री मनोज संचेती**
आर.सी. बाफना स्वाध्याय भवन के सामने, व्यंकटेश मन्दिर के पीछे, गणपति नगर, **जलगाँव-425001** (महाराष्ट्र)
मोबाइल : 9422591423

प्रकाशकीय

कथाएँ सभी को प्रिय होती हैं। इनके अध्ययन-अध्यापन में बाल-युवा एवं वृद्ध सभी रस लेते हैं। यह साहित्य की एक ऐसी विधा है जो सरस, रुचिकर एवं आनन्ददायी होती है।

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. अपने प्रवचनों में कथा के माध्यम से धर्म के मर्म को सहज रूप से प्रस्तुत करते हैं, जिससे श्रोताओं को विषय वस्तु शीघ्र ही समझ में आ जाती है। कथाएँ आगम में वर्णित हों तो अधिक प्रामाणिक, विश्वसनीय एवं प्रेरक होती हैं। ज्ञाताधर्म-कथांग सूत्र में प्रेरणादायी कथाओं का वर्णन विस्तृत रूप से आया है। इसका कलेवर विशाल होने के कारण सभी के लिए समय निकालकर इस आगम का अध्ययन करना सहज नहीं है। इसलिए इसमें वर्णित कथा भाग को उपयुक्त संकोच-विस्तार करके श्री दीपचन्द जी संचेती ने यह पुस्तक तैयार की है। इस पुस्तक के पंचम संस्करण को प्रकाशित करते हुए सम्यग्ज्ञान मण्डल अति हर्ष का अनुभव कर रहा है।

पुस्तक 'ज्ञातासूत्र की कथाएँ' इस संस्कारण के प्रकाशन में स्व. मदनराजजी भण्डारी, देवनगर-जोधपुर की पुण्य-स्मृति में भण्डारी परिवार से अर्थसहयोग प्राप्त हुआ, एतदर्थ मण्डल परिवार आपका हार्दिक आभारी है।

इस संस्करण का प्रूफ संशोधन श्री धर्मेन्द्रजी जैन एवं श्री त्रिलोकचन्दजी जैन, जयपुर ने तथा लेज़र टाइप सैटिंग श्री प्रहलाद नारायणजी लखेरा ने की है। इन सभी का मण्डल हार्दिक आभार प्रकट करता है।

विश्वास है प्रस्तुत पुस्तक पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी होगी।

-:: निवेदक ::-

आनन्द चौपड़ा	**विनयचन्द डागा**	**डॉ. धर्मचन्द जैन**	**अशोक कुमार सेठ**
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

समर्पण

जिन्होंने मेरे जीवन को एक
नया मोड़ दिया,
स्वाध्याय एवं अध्ययन में
रुचि जगायी,
उन आचार्य भगवन्त
श्री हस्तीमलजी म.सा.
की पावन स्मृति में...

-दीपचन्द संचेती

क्रमारोहण

1. मेघकुमार 1-11
2. धन्ना सार्थवाह 12-19
3. मयूरी के अण्डे 20-23
4. दो कछुए 24-26
5. थावच्चापुत्र 27-36
6. तुम्बा 37-39
7. रोहिणी 40-44
8. मल्लिनाथ 45-51
9. जिनरक्ष-जिनपाल 52-56
10. चन्द्रमा 57-58
11. दावद्रव वृक्ष 59-61
12. खाई का पानी (सुबुद्धि प्रधान) 62-65
13. नंद मणिकार 66-70
14. तेतलीपुत्र 71-77
15. नंदीफल 78-81
16. द्रौपदी 82-93
17. आकीर्ण जाति के घोड़े 94-97
18. सुंसुमा 98-101
19. पुंडरीक-कंडरीक 102-104

◇◆◇

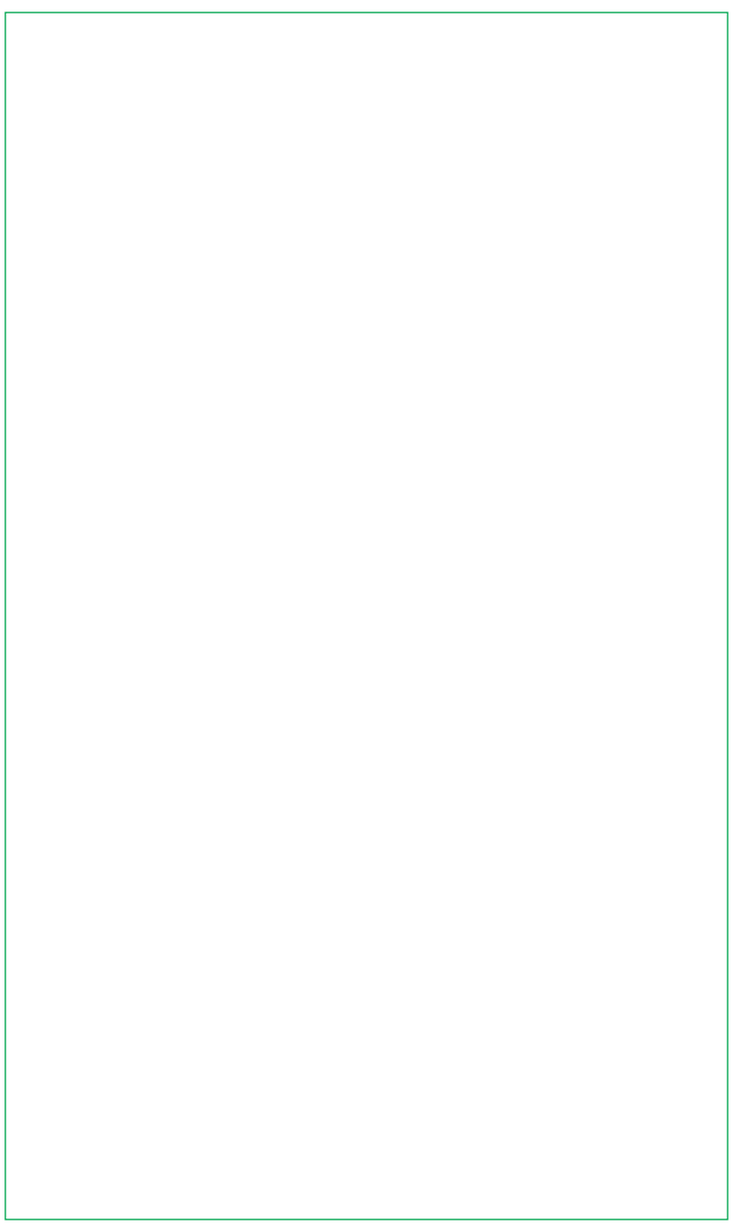

मेघकुमार

राजगृही एक विशाल, सम्पन्न, सलोनी एवं सुन्दर नगरी थी। महाराजा श्रेणिक राजा थे। वे न्यायप्रिय एवं अच्छे प्रजापालक थे। नन्दा रानी से उन्हें अभयकुमार नाम का एक पुत्र प्राप्त हुआ था; जो तीक्ष्ण बुद्धि वाला एवं राजनीति में निपुण था। श्रेणिक के दरबार में उसे मन्त्री का पद भी सौंपा गया था। प्रजा सुखी एवं सन्तुष्ट थी। महाराजा श्रेणिक की धारिणी नाम की एक और रानी थी जो पतिपरायणा थी।

एक रात्रि धारिणी अपनी सुखशय्या पर सोयी हुई थी। रात्रि का अन्तिम प्रहर था। उसने स्वप्न देखा कि एक सफेद और बलवान हाथी उसके मुख में प्रवेश कर रहा है। इसी वक्त प्रात:काल की चेतावनी देने वाली भेरी का निनाद राजमहल में गूँज उठा। धारिणी को जो स्वप्न उसने देखा, उसका फल जानने की जिज्ञासा हुई। वह जहाँ राजा श्रेणिक थे वहाँ गयी और उसने जैसा स्वप्न देखा था वैसा नम्र शब्दों में श्रेणिक से कथन किया।

व्यायाम, स्नान आदि आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर और वस्त्राभूषण से अलंकृत हो महाराजा श्रेणिक दरबार की तरफ पधारे। चारणों की जय-जयनाद के बीच श्रेणिक ने दरबार में प्रवेश किया और सिंहासन पर विराजे। रानी धारिणी भी दरबार में आयी और महिला कक्ष में अपने योग्य स्थान पर बैठी। महाराजा ने नैमित्तज्ञों से धारिणी को आये हुए स्वप्न का कथन किया और फल पूछा।

नैमित्तज्ञों ने कहा–''महाराज! स्वप्न 72 प्रकार के होते हैं। उनमें 42 अति सामान्य और 30 अति श्रेष्ठ होते हैं। जब तीर्थङ्कर और चक्रवर्ती गर्भ में आते हैं तब उनकी माता 14 स्वप्न, वासुदेव की माता 7 स्वप्न, बलदेव की माता 4 स्वप्न और माण्डलिक राजा की माता एक स्वप्न देखती है। महारानी ने हाथी का स्वप्न देखा है। फलस्वरूप अपने राज्य की वृद्धि होगी और नवमास पूर्ण होने पर महारानी की कोख से एक महान् भाग्यशाली एवं प्रतिभावान पुत्र का जन्म होगा जो भविष्य में दीक्षित होकर अपना आत्मकल्याण करेगा।''

स्वप्न का फल सुनकर राजा–रानी दोनों प्रसन्न हुए। यथोचित सत्कार–पुरस्कार के साथ उन्होंने नैमित्तज्ञों को विदा किया। परमोच्च भावना के साथ धारिणी गर्भ का पालन करने लगी।

दो मास व्यतीत हुए। तीसरे महीने में धारिणी को दोहद उत्पन्न हुआ। यह वर्षाऋतु का काल नहीं था। दोहद इस प्रकार था –''आकाश बादलों से आच्छादित हो रहा है। बिजलियाँ चमक रही हैं। पूरब में इन्द्रधनुष दिखाई दे रहा है। मन्द–मन्द पवन बह रहा है। बरसात हो रही है। धरती पर वनस्पति की हरी चादर बिछी हुई है। ऐसे सुहावने समय में अपने पति महाराजा श्रेणिक के साथ हाथी पर सवार होकर सर्व सेना के साथ वैभारगिरी पर्वत के इर्द–गिर्द भ्रमण करूँ।''

दोहद तो उत्पन्न हुआ लेकिन वर्षा ऋतु तो थी नहीं। न कोई वर्षा के ऐसे आसार थे। परिणामत: दोहद पूर्ण न हो सका। धारिणी दिन–ब–दिन मन से निराश, वचन से अबोल और काया से कृश और निस्तेज होती जा रही थी। बड़े प्रयास के बाद दासी के द्वारा राजा

श्रेणिक को इस दोहद का पता चला। वे शीघ्र ही धारिणी के महल में गये। उसे आश्वस्त किया, दोहद की जानकारी ली। उसे विश्वास दिलाया कि वे उसका दोहद पूर्ण करेंगे।

आश्वासन तो दे दिया। लेकिन यह गुत्थी किस तरह सुलझायें ? वे इस चिन्ता में विचारमग्न थे कि मन्त्री अभयकुमार पिता के चरण वन्दन के लिए वहाँ उपस्थित हुए। परन्तु न तो श्रेणिक ने उनकी तरफ देखा, न बुलाया, न उनके आने की स्वीकृति दी। वे तो घोर चिन्ता के सागर में डूबे हुए थे।

अभयकुमार ने भी जान लिया कि आज पिताजी किसी गहरी चिन्ता में हैं। उन्होंने बड़ी नम्रता के साथ पिताजी से चिन्ता का कारण पूछा और हर हाल में उन्हें चिन्तामुक्त करने का आश्वासन दिया। महाराजा श्रेणिक ने सारी समस्या अपने बुद्धिमान पुत्र और अमात्य अभयकुमार के सामने रखी। तब कहीं श्रेणिक के माथे का बोझ कुछ हल्का हुआ। उन्हें अपने पुत्र की बुद्धिमत्ता पर पूरा भरोसा था।

अभयकुमार सोच रहे हैं। अकाल में बरसात और सर्व वर्षाकालीन दृश्य यह तो मानवशक्ति के परे की बात है। इस कार्य में दैवीय शक्ति की सहायता लेना अनिवार्य है। चिन्तन करते-करते उन्हें स्मरण हो आया कि उनका एक मित्र मृत्यु को प्राप्त होकर प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुआ है।

अभयकुमार पौषधशाला में आये। अपने इष्टमित्र 'देव' का स्मरण किया और तेले सहित पौषधव्रत की साधना में बैठ गये। तपस्या के प्रभाव से इष्ट देव का आसन चलायमान हुआ और अवधिज्ञान से

जानकर देव पौषधशाला में उपस्थित हुआ। देव ने अभयकुमार से पूछा–''मित्र! मुझे क्यों याद किया है ?'' अभयकुमार ने सारा वृत्तान्त देव को सुना दिया और माता का दोहद पूर्ण हो, यह प्रार्थना की।

देव ने कहा–''अभयकुमार! तुम माताजी के दोहद की पूर्व तैयारी शुरू कर दो। आगे का सारा प्रबन्ध में करता हूँ।''

तैयारी शुरू हुई। शुभ लक्षणों से युक्त एक हाथी मँगाया गया। उसे सजाया गया। सारी राजगृही नगरी को सजाने का हुक्म हुआ। राजा श्रेणिक और रानी धारिणी हाथी पर सवार हुए। वर्षा की बौछारें आई, इन्द्रधनुष दिखाई दिया। मन्द पवन बहने लगा। धरती–माता ने मानो हरा दुपट्टा ओढ़ लिया। बरसात के दिनों का नजारा बन गया। आगे चतुरंगिनी सेना, पीछे वह हाथी, इस तरह नगर, उद्यान, वनखण्ड, वैभारगिरि पर्वत का परिसर घूमकर रानी धारिणी अपने राजमहल में लौटी। दोहद पूर्ण होने की खुशी थी। रोम–रोम पुलकित था।

नवमास पूर्ण हुए। धारिणी ने एक पुत्र को जन्म दिया। सारे राजगृह नगर में खुशियाँ मनायी गई। मंगल गीत गाये गये। मेघ का दोहद हुआ था इसलिए सर्व सम्मति से बालक का नाम मेघकुमार रखा गया। मेघकुमार आठ वर्ष का हुआ। पढ़ाई के लिए उसे कलाचार्य को सौंपा गया। यथासमय वह सब विद्याओं में पारंगत बना। आचार्य उसे राजगृही लेकर आये। आचार्य के अभिप्राय से राजा श्रेणिक को प्रसन्नता हुई। मेघकुमार यौवनावस्था को प्राप्त हुआ। अप्सरा सदृश्य सुन्दर एवं गुणी आठ राजकन्याओं के साथ उसका विवाह करवाया गया। ये आठ

पत्नियाँ मानो मेघकुमार की अष्ट सिद्धियाँ थीं। सांसारिक सुखोपभोगों में मेघकुमार के दिन व्यतीत हो रहे थे।

एक दिन राजमहल की अटारी में बैठे हुए मेघकुमार की नजर राजमार्ग पर गई तो उसने देखा कि राजगृही के नागरिक झुण्ड के झुण्ड बनाकर गुणशील उद्यान की तरफ जा रहे हैं। जिज्ञासा जागृत हुई। उसने सेवक को बुलाकर कारण पूछा। सेवक ने कहा-''कुमार! पथभ्रष्ट लोगों को मोक्ष का मार्ग बताने वाले करुणासागर भगवान महावीर का गुणशील उद्यान में आगमन हुआ है। ये सारे नागरिक उनके दर्शन करने एवं उनके पवित्र उपदेश श्रवण करने उस तरफ जा रहे हैं।''

समाचार सुनते ही मेघकुमार के आनन्द का पार न रहा। वह भी स्नान कर, वस्त्राभूषण से अलंकृत होकर अपने अंत:पुर के साथ भगवान के दर्शनार्थ निकला। जहाँ से भगवान के दर्शन हो सकते थे, वहाँ वह रथ से नीचे उतरा। भगवान को वन्दन किया। सचित्त मालाओं का त्याग किया। बहुमानदर्शक छत्र, दण्ड आदि का त्याग किया। वस्त्र का उत्तरासङ्ग बनाया। सांसारिक बातें दिमाग से हटा दीं और एकाग्रता से भगवान की धीर-गम्भीर वाणी अपने कानों में सँजोता रहा।

मेघकुमार ने भगवान की अमृतमय वाणी का पूर्ण एकाग्रता से श्रवण किया। उसके हृदय का मोहान्धकार दूर हुआ। संसार की भौतिक बातें निस्सार हैं, क्षणिक हैं, जहाँ संयोग है, वहाँ निश्चित ही वियोग भी है; जीवन क्या है ? बिजली की क्षणभंगुर आभा है; एक पानी का बुलबुला है। ये बातें उसके हृदय में बस गईं।

मेघकुमार ने प्रभु को वन्दन किया और नम्रता से बोला-''प्रभो! आपके उपदेश से मेरे सारे भ्रम मिट गये हैं, ज्ञान-चक्षु खुल गये हैं। मोह का अन्धकार दूर हो गया है। मुझे केवली प्ररूपित धर्म में श्रद्धा हुई है, प्रतीति हुई है, रुचि हुई है। अत: मैं भी संसार का त्याग कर आपके पास संयम ग्रहण करना चाहता हूँ। मैं माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर दीक्षा लूँगा।'' भगवान ने कहा-''अहासुहं देवाणुप्पिया।'' तुम्हें जैसे सुख उपजे, वैसा करो।''

मेघकुमार तुरन्त माता-पिता के पास आया और प्रणाम किया। दीक्षा लेने का अपना मनोभाव प्रकट किया और आज्ञा चाही।

यह सुनते ही धारिणी मूर्च्छित हो गयी। बड़े प्रयास से होश आने के बाद, रोते बिलखते हुए वह मेघकुमार से बोल पायी-''पुत्र! मैं तो सिर्फ तुम्हारे सहारे जीवित हूँ। मैं तुम्हारा वियोग घड़ीभर भी बर्दाश्त नहीं कर सकूँगी। तुम्हारी उम्र अभी दीक्षा लेने की नहीं है। संयम ग्रहण करने पर भूख, तृषा, शीत, उष्ण आदि अनेक प्रकार के परिषह सहन करने पड़ते हैं और यह सहना तुम्हारे लिये असम्भव होगा।''

महाराजा श्रेणिक भी बोले-''बेटा! यदि दीक्षा ही लेनी थी तो इन आठ पत्नियों के साथ लग्नबन्धन में क्यों बँधे ? क्या तुम्हारे दीक्षा लेने से इन पर अन्याय नहीं होगा? फिर यह सम्पूर्ण साम्राज्य भी तो तुम्हारा ही है। इसकी देखभाल कौन करेगा? अत: संयम का विचार छोड़ दो।''

अनेक तरह से समझाने पर भी मेघकुमार अपने निश्चय से नहीं हटे तो मजबूर होकर माता-पिता ने आज्ञा प्रदान की, परन्तु एक शर्त रखी। शर्त थी कि वह एक दिन के लिए ही सही किन्तु राजसिंहासन

पर बैठे। राज्याभिषेक हुआ। खूब दान दिया गया। एक दिन बाद महाभिनिष्क्रमण की तैयारी होने लगी। मेघकुमार गुणशील उद्यान में आये। भगवान को वन्दना की। ईशानकोण में जाकर उन्होंने अपना संसारी वेश उतारा। मुनिवेश ग्रहण किया। स्वयं पंचमुष्टि लोच किया और भगवान महावीर स्वामी के सामने दीक्षा-पाठ ग्रहण करने हेतु उपस्थित हुए।

दीक्षा-विधि पूर्ण हुई। ज्ञान, ध्यान और संयम में दत्तचित्त रहते हुए प्रथम दिवस तो व्यतीत हुआ। सन्ध्या हुई। देवसी प्रतिक्रमण हुआ। धर्मचर्चा, शंका-समाधान हो गया। निद्रा का समय होने से सभी सन्त अपना-अपना बिस्तर लगाने लगे। दीक्षा पर्याय के अनुसार सभी सन्तों के बिस्तर लग जाने के पश्चात् मुनि मेघकुमार को प्रवेश द्वार के पास जगह मिली। यह आने-जाने का एकमात्र मार्ग था। लघुनीत के लिए सन्त उठते और बाहर आते-जाते। वे द्वार के पास सोये हुए मेघमुनि से टकराते, उनके पैरों की ठोकरें मेघमुनि को लगतीं। इस कारण रातभर मेघमुनि सो न सके।

विचारों की शृङ्खला चालू हुई -''मैं राजकुमार हूँ। सारी प्रजा मेरे सामने झुकती है और आज मैं यहाँ सबकी ठोकरें खा रहा हूँ। ऐसे अपमानित होने के बजाय मैं सुबह भगवान को यह मुनिवेश लौटा दूँगा और यहाँ से चला जाऊँगा, यही मेरे लिये श्रेयस्कर होगा।'' इसी चिन्तन और संकल्प में रात पूरी हुई।

प्रात: वन्दन के लिए जैसे ही मेघमुनि भगवान महावीर स्वामी के पास गये, भगवान की वाणी गूँजी-''मेघ! रातभर तुम्हारे मन में अनेक

संकल्प-विकल्प उठे और अध्यवसाय हुआ कि यह मुनिवेश लौटाकर वापस गृहस्थ धर्म में चला जाऊँ। क्या यह सत्य है?''

मेघमुनि-''हाँ प्रभो ! यह सत्य है। रात्रि में ऐसा विचार मन में आया और वही बात कहने के लिए मैं उपस्थित हुआ हूँ।''

भगवान ने मेघकुमार को सम्बोधित करते हुए कहा-''मेघ! रात्रि के थोड़े से कष्टों से तुम घबरा गये। संयम का त्याग कर घर जाने की तैयारी करने लगे। यही है तुम्हारी दृढ़ता और वीरता? संयमी जीव तो सिर पर पहाड़ टूट पड़े तो भी हताश नहीं होते। परिषहों का सामना करते हैं। तुम अपने पूर्व-भव का स्मरण करो। दूसरों को सुख देने के लिए तुमने कितने कष्ट सहे और उसी के परिणामस्वरूप तुमने राजगृही नगरी में राजा श्रेणिक के घर में पुत्र रूप में जन्म पाया। विघ्न, संकट आदि में मानव की परीक्षा होती है। उन से घबरा जाना उचित नहीं है। तुम्हारे पिछले भवों के कर्मों का स्मरण करो। समभावपूर्वक दृढ़ मनोबल से संयम का पालन करो।''

मेघमुनि-''प्रभो ! पूर्वजन्म में मैंने ऐसा कौनसा कार्य किया है ? कृपा कर मुझे बताइये।''

भगवान-''मेघ! सुनो, आज से तीसरे पूर्व भव में तुम वैताढ्य पर्वत के जंगल में 9 हाथ लम्बे और 7 हाथ ऊँचे ऐसे बलिष्ठ सफेद हाथी थे। सभी हाथियों के यूथ में तुम अग्रसर और नायक समान रहते थे। एक बार ग्रीष्म ऋतु में अत्यधिक गर्मी थी। पेड़ों की परस्पर टकराहट से जंगल में दावानल का प्रकोप हुआ। आग चारों तरफ फैली। छोटे-बड़े पशु-पक्षी आग में जलकर भस्म होने लगे। आग से

बचने के लिए जहाँ कीचड़ का गड्ढा था और थोड़ा-सा पानी था, वहाँ तुम पानी पीने गये और वहीं फँस गये। अपने भव्य शरीर और बोझ के कारण तुम बाहर निकल नहीं सके। यह दृश्य एक युवा हाथी, जिसे तुमने एक बार अपने यूथ से निकाल दिया था, देख रहा था। बदला लेने का उचित समय जानकर उसने तुम्हारे ऊपर अनेक प्रहार किये। कीचड़ में फँसे होने के कारण तुम प्रतिकार नहीं कर सके। अत्यधिक घावों के कारण वहीं पर तुम्हारा देहान्त हुआ।

विन्ध्य पर्वत के आँचल में गंगा नदी के किनारे तुमने पुन: हाथी के भव में जन्म लिया और जंगल के प्राणियों के प्रमुख सरदार बने। ग्रीष्म ऋतु में उस जंगल में भी आग लगी। यह देखकर तुम्हें वह दृश्य याद आया जो पूर्व भव में तुमने देखा था। तुम्हें जातिस्मरण ज्ञान हुआ।

अनेक जीवों की रक्षा के लिए तुमने एक निर्णय लिया। अपने यूथ के सभी हाथियों की मदद से तुमने एक मण्डलाकार भूखण्ड के अनेक वृक्ष उखाड़कर एक तरफ फेंक दिये। घास-फूस आदि भी नष्ट कर दी। उस भूखण्ड में सिर्फ मिट्टी के अलावा कुछ न रखा। ईंधन के अभाव में वहाँ दावानल फैलने की सम्भावना ही नहीं रही।

उस सुरक्षित स्थान में सभी वन्य-पशु आश्रयार्थ आये। पूरा स्थान पशु-पक्षियों से भर गया। जन्मजात वैर को लेकर चलने वाले प्राणी भी वहाँ वैर-विरोध भूलकर एकत्रित हुए। जीवन सबको प्यारा होता है। यह भू-भाग हाथी, सिंह, बाघ, हिरण, सियार, खरगोश, वनगाय आदि अनेक प्राणियों का आश्रय स्थान बना।

ऐसे में एक भयाक्रान्त बना हुआ नन्हा सा खरगोश अपनी प्राणरक्षा के लिए जगह ढूँढ़ता हुआ इधर-उधर दौड़ता रहा था। उसे जगह नहीं मिल रही थी। बदन खुजलाने के लिए तुमने अपना एक पैर ऊपर उठाया तो पैर के उस रिक्त स्थान में वह खरगोश दुबक कर बैठ गया।

पैर नीचे रखने के वक्त तुमने देखा कि एक खरगोश वहाँ बैठा है। पैर नीचे रखने का परिणाम था खरगोश की मृत्यु। तुम्हारे हृदय में करुणा जागी। तुमने अपना पैर अधर में लटकाये रखा। ढाई दिन बाद दावाग्नि शान्त हुई। सभी पशु-पक्षी इधर-उधर चले गये। खरगोश भी भाग गया। तब तुमने पैर नीचे रखने की कोशिश की। तीन दिन के तनाव और जकड़न से सन्तुलन नहीं रहा। तुम धड़ाम से नीचे गिर पड़े और मृत्यु को प्राप्त हुए। तुमने जीव-दया का यह सर्वोत्कृष्ट कार्य किया। इसी कारण तुम श्रेणिक के घर राजपुत्र मेघकुमार के रूप में उत्पन्न हुए। एक तिर्यञ्च (हाथी) के भव में भी तुम्हारे मन में जीवदया थी, इतना त्याग था कि अपने प्राण भी न्यौछावर कर दिये। अब तो तुम्हें मानव-भव मिला है। निद्रा में जरा सा खलल पड़ने से और सन्तों के पद-स्पर्श से तुम बेचैन हो उठे हो। मेघ! मैंने तुम्हारा पूर्व भव बता दिया है। अब तुम्हें अपने हक में जो श्रेयस्कर लगे वैसा निर्णय करना है।'

केवलज्ञानी भगवान की वाणी सुनते ही मेघमुनि पुन: संयम में स्थिर हुए। भगवान को वन्दन किया। आलोचना की। प्रायश्चित्त लिया। संयम यात्रा में लीन हो गये।

भगवान महावीर की आज्ञा लेकर मेघमुनि ने बारह प्रकार की

भिक्षु प्रतिमाएँ धारण की, गुणरत्न संवत्सर तप तथा अन्य छोटे-बड़े तप किये। शरीर निर्बल बन गया था। अध्यात्म-साधना में शरीर सहायक नहीं बन रहा है, यह देखकर मेघमुनि ने संथारा धारण किया। क्षमा और समभाव में रमण करते हुए उन्होंने देहत्याग किया।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया-''भन्ते! मेघमुनि आयुष्य पूर्ण कर कहाँ उत्पन्न हुए ?''

भगवान-''गौतम ! नव ग्रैवेयक के ऊपर पाँच अनुत्तर विमान हैं। उनमें विजय नाम के विमान में मेघमुनि 33 सागर की आयु लेकर उत्पन्न हुए हैं। वहाँ से च्यवकर वे महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे, दीक्षा ग्रहण करेंगे और उसी भव से मोक्ष जायेंगे।

उपसंहार

मेघमुनि संयम ग्रहण करने पर प्रथम रात्रि में ही सन्तों के पद-स्पर्श से बेचैन हो गये। संयम छोड़ने का सोचने लगे। लेकिन भगवान महावीर ने अपने मधुर वचनों से उन्हें पुन: संयम में स्थिर किया।

हाथी के भव में उन्होंने खरगोश पर अनुकम्पा की, अन्य जीवों की रक्षा के लिए अपने प्राण भी त्याग दिये, इसी कारण मोक्ष-लक्ष्मी के हकदार बन सके। ऐसे ही आचार्य भी अपने अविनीत और चंचल शिष्यों को संयम में स्थिर करें।

◇◆◇

धन्ना सार्थवाह

राजगृही नगरी विशाल, रमणीय, व्यापार और धन-धान्य से समृद्ध थी। मगध देश की राजधानी थी। राजा श्रेणिक और उनके पुत्र कोणिक के काल में यह अपनी चरम सीमा तक सम्पन्न थी। भगवान महावीर के संयमी जीवन के 14 चातुर्मास इसी राजगृही नगरी में हुए थे।

राजगृही नगरी के ईशानकोण में गुणशील नाम का एक उद्यान था। इससे आगे भी एक उद्यान था, जो किसी समय रमणीय रहा होगा, लेकिन अब ऊजाड़ हो गया था। इस ऊजाड़ उद्यान में नाग यक्ष का जीर्ण देवालय और पास में ही एक कुआ था। इस ऊजाड़ उद्यान के आगे ही पहाड़ी में एक चोरपल्ली (गुफा) थी, जहाँ चोरों का निवास स्थान था।

इस राजगृही नगरी में धन्ना नाम का एक सार्थवाह, अपनी भद्रा नाम की पत्नी के साथ रहता था। भद्रा अपने नाम सदृश स्वभाव से भद्र थी। सभी प्रकार की समृद्धि थी, सम्पन्नता थी, शहर में मान-सम्मान एवं आदर था। सिर्फ सन्तान न होने के कारण वे दोनों दु:खी थे।

एक रात्रि की बात है। लाख कोशिश करने के बावजूद भी भद्रा को नींद नहीं आई। सन्तान का अभाव उसे कोसता, बेचैन करता और टीसता रहा। लम्बे समय तक विचार करने के बाद एकाएक उसे विचार आया-''क्यों न सुबह होते ही पति की आज्ञा लेकर मैं नागयक्ष की

पूजा करूँ और यक्ष से सन्तान की याचना करूँ। मुझे विश्वास है कि नागयक्ष की सेवा, पूजा-अर्चना से मेरी मनोकामना पूरी होगी।''

तदनुसार सुबह होते ही भद्रा ने स्नान किया, सुन्दर वस्त्रालंकार धारण किये, पति की आज्ञा ली, पूजा की सामग्री का थाल लिया, अनेक सौभाग्यवती महिलाओं के साथ वह शहर से बाहर जहाँ पुष्करिणी नाम की बावड़ी थी, वहाँ आई। वहाँ पर भी स्नान किया। हरे वस्त्र परिधान धारण किये। श्रद्धापूर्वक नागयक्ष को वन्दन किया। भक्तिभाव से पूजाकर मनोकामना पूर्ण करने की याचना की।

पूजा से निवृत्त होकर वह पुन: बावड़ी पर आई। अपनी सहेलियों के साथ भोजन किया और अपने घर लौटी। कहते हैं कौए का वृक्ष की डाल पर बैठना और उसी समय योगायोग से डाल का टूटना सम्भव है। नागयक्ष की पूजा करने के बाद भद्रा गर्भवती हुई। उसे नागयक्ष के दर्शन का दोहद भी उत्पन्न हुआ । अपने गर्भ का वह यथोचित पालन करने लगी। समय पूर्ण होने पर उसने एक सुन्दर और तेजस्वी बालक को जन्म दिया। यक्षदेव की मनौती से यह पुत्र हुआ, ऐसा मानकर पुत्र का नाम देवदत्त रखा । धन्ना सार्थवाह और भद्रा की खुशी का पारावार न रहा। जीवन में जो अभाव था, उसकी भी पूर्ति हो गयी। धन-दौलत सम्पत्ति आदि तो उनके पास पहले से ही थी । पुत्र को खिलाने के लिए उन्होंने एक नौकर की आवश्यकता महसूस की। उनके कानों पर पंथक नाम के एक सेवक की चर्चा आई। पंथक सुन्दर था, कान्तिवान था और छोटे बच्चों को खिलाने में कुशल था। बच्चों का शारीरिक और मानसिक विकास किस तरह होगा ? यह हुनर उसे ज्ञात था।

बच्चों के मन कोमल होते हैं। आस-पास के जो दृश्य वे देखते हैं और जो सुनते हैं, वे शीघ्र ही ग्रहण कर लेते हैं और उसी वातावरण में ढल जाते हैं। बच्चों की देखभाल करने वाले सबसे अच्छे सेवक के रूप में पंथक की राजगृही में प्रसिद्धि थी। धन्ना सार्थवाह ने देवदत्त को खिलाने, घुमाने और देखभाल करने के लिए पंथक की सेवक के रूप में नियुक्ति की।

पहाड़ी में जो चोरपल्ली थी, वह मालुकापल्ली नाम से जानी जाती थी। वहाँ विजय नाम का चोर अपने 500 साथियों के साथ रहता था। विजय चोर क्रूरता का अवतार था। दया माता उसे मालूम नहीं थी। मन में ठान लेता कि यह वस्तु हासिल करनी है तो हर तरकीब से वह हथिया लेता। अपने 500 चोर साथियों का वह सरदार था। विजय चोर की सम्पूर्ण राजगृही नगरी में दहशत थी। उसके नाम से ही राजगृही के लोग काँपते थे। उसके नाम का आतंक छाया हुआ था।

एक दिन भद्रा ने अपने बेटे देवदत्त को नहलाया, कपड़े और आभूषण पहनाये। आँखों में काजल अंजन किया, माथे पर चन्दन लगाया और उसे पंथक को सौंप दिया कि वह बाहर खुले मैदान में, अन्य बच्चों के साथ खिलाकर लाये। पंथक पास के ही क्रीडांगण पर गया, जहाँ अनेक बच्चे खेल रहे थे। सब बच्चे पंथक को जानते थे, पहचानते थे, उससे हिल मिल गये थे। पंथक को आते देख सब बच्चों को खुशी हुई। देवदत्त को पंथक ने एक वृक्ष के नीचे चबूतरे पर बैठाया। सब बच्चों ने पंथक को घेर लिया। उससे सब बतियाने लगे। विजय चोर उस समय वहाँ से गुजर रहा था। उसने आभूषणों से लदे हुए

देवदत्त को देखा। गहनों की प्राप्ति होगी और फिरौती की भी बड़ी रकम मिल सकेगी, यह सोचकर सबकी नजर बचाकर उसने देवदत्त का अपहरण कर लिया। गली-कूँचे से भागता हुआ वह राजगृही के बाहर ऊजड़ मैदान में आया। देवदत्त के सभी गहने उसने उतार लिये। निर्दयता से उसकी हत्या की और लाश एक भग्न कुएँ में फेंक दी। वहीं से मालुकापल्ली जाने की पगडण्डी थी। उस रास्ते वह अपनी चोर पल्ली पहुँचा और छिपकर बैठ गया।

इधर पंथक का ध्यान जब चबूतरे की तरफ गया, देवदत्त को न देखकर वह डरा। उसने सारा क्रीडांगण छान मारा। अपने सभी दोस्तों से पूछा। अपहरण की आशंका से वह रोने लगा। काफी देर बाद वह अपने मालिक के घर गया और रोते हुए धन्ना सार्थवाह से सब घटना कथन की। धन्ना और भद्रा तो मूर्च्छित हो गये। होश में आने पर धन्ना सार्थवाह ने अपने सारे नौकर, मित्र और सम्बन्धियों को देवदत्त की खोज में लगा दिया। खुद भी घूमा। आखिरी इलाज समझ कर नगर रक्षक कोतवाल के पास फरियाद की।

कोतवाल ने अपने साथ सैनिक लिये। सारा शहर, बाग, बगीचे, उद्यान खण्डहर देख लिये। बाद में उस दिशा में मुड़ा जहाँ, भग्न कुआ था। भग्न कुएँ में उसे देवदत्त की लाश मिली। लाश धन्ना सार्थवाह को सौंपकर कोतवाल ने विजय के पैरों के चिह्नों से वह पगडण्डी पकड़ी। पल्ली को घेर लिया। विजय चोर को गिरफ्तार किया और उसे राजगृही ले आया। विजय के गले में एक पट्टी बाँध दी। पट्टी पर लिखा था- ''यह विजय चोर है। देवदत्त का हत्यारा है।'' उसका मुँह काला किया

गया, उसे गधे पर बिठाया, फूटे ढोल की आवाज से उसे सारे शहर में घुमाकर कारावास में डाल दिया।

समय बीत रहा था। समय एक मात्र ऐसा मरहम है जो दु:ख का ताप कुछ हल्का करता है। धीरे-धीरे धन्ना और भद्रा अपना दु:ख भूलते चले गये। धन्ना सार्थवाह ने व्यापारार्थ कुछ माल दूसरे राज्य से मँगवाया था। उसकी चुँगी नियमानुसार उसने राजकोष में जमा नहीं की। इस राज्याभियोग में उसे बड़ा दण्ड मिला और दण्ड न भरने से उसे कारावास में डाल दिया गया। वह उसी कारावास में और उसी कोठरी में रखा गया जहाँ विजय चोर भी बन्द था। विजय के दायें पैर में बेड़ी थी। उसी बेड़ी में धन्ना का बायाँ पैर अटका दिया। बेड़ी एक, पैर दो, एक धन्ना का एक विजय चोर का। एक ही बेड़ी में दोनों जकड़े गये। परिणाम यह हुआ कि एक कदम भी एक को चलना होता तो दूसरे की इच्छा और मदद बगैर वह चल नहीं सकता था।

कारागृह में धन्ना के लिए भोजन तो भद्रा घर से बनाकर पंथक के साथ भेजती थी। विजय चोर को तो कारागृह का ही घटिया और अपर्याप्त खाना मिलता था। एक दिन पंथक धन्ना का भोजन ले आया। विजय चोर ने धन्ना सार्थवाह से उसमें से थोड़ा भोज्य पदार्थ देने की याचना की। धन्ना आग बबूला हो गया। तमतमाते हुए बोला- ''नराधम ! तूने मेरे निर्दोष और मासूम बच्चे की निर्दयता से हत्या की है। भोजन में कुछ हिस्सा माँगते हुए तुझे शर्म नहीं आती ? भोजन के उपरान्त कुछ बच गया तो मैं उसे गाय-कुत्ते को खिलाऊँगा या फेंक दूँगा लेकिन तुझे किसी हालत में नहीं दूँगा।''

दो तीन प्रहर बीते होंगे। यथेच्छ भोजन करने के कारण धन्ना को शौच जाने की हाजत हुई। उसने विजय चोर से कहा–''मुझे शौच जाना है, थोड़ा बाहर चलो।'' विजय चोर रुखाई से बोला–''सेठ, खाना आपने खाया है इसलिये आपको शौच की हाजत हुई। मैंने खाया नहीं और मुझे जाना भी नहीं। इसलिए आप अकेले चले जाओ।''

अकेले कैसे जाये ? धन्ना सेठ सोचने लगा कि यह तो चौबीसों घण्टे का काम है। विजय चोर से मीठा वचन बोल और भोजन में से आधा हिस्सा देने का आश्वासन देकर पटाना पड़ेगा। अन्त में धन्ना सेठ ने विजय चोर को भोजन देने का आश्वासन दे दिया। तब जाकर कहीं मामला निपटा।

दूसरे दिन पंथक सेठ का भोजन ले आया। सेठ ने आधा भोजन विजय चोर को दिया। आधा खुद ने खाया। पंथक देख रहा था। उसने जूठे बर्तन समेटे और वह घर लौट आया। उसने जो देखा था वह सारा वाकया अपनी मालकिन भद्रा को बयान किया।

सुनते ही भद्रा क्रोध के मारे तमतमा उठी। मुझे सन्तान नहीं थी। नागयक्ष की मनौती से मुझे एक पुत्र हुआ। उसका विजय चोर ने अपहरण किया, निर्मम हत्या की, उसी चोर को मेरे पति भोजन में से आधा हिस्सा देते हैं, उससे मित्रता जताते हैं, उसका सत्कार करते हैं। भद्रा के पास माँ का हृदय था। पति का यह व्यवहार वह कैसे बर्दाश्त करती ? पति की अक्ल मारी गयी है, यह सोचकर वह मन ही मन कुढ़ने लगी।

कुछ दिनों बाद धन्ना के सम्बन्धी और व्यापारी मित्रों ने चुँगी

और दण्ड की रकम राज्य के खजाने में भरकर, धन्ना सेठ को कारावास से मुक्त कराने का आदेश प्राप्त कर लिया। धन्ना की रिहाई हुई। सभी ने धन्ना का स्वागत-सत्कार किया, खुशियाँ मनायी। लेकिन भद्रा तो मुँह फुलाये बैठी रही। धन्ना को भी आश्चर्य हुआ। उसने भद्रा से पूछा-''प्रिये! मैं बरी हुआ, इसकी तुम्हें कोई खुशी नहीं ?''

भद्रा बरस पड़ी-''आपने कारावास में ऐसा कौनसा सत्कृत्य किया है, जिससे आपके आगमन की मुझे खुशी हो ? विजय चोर जिसने हमारे एकमात्र प्यारे पुत्र का अपहरण किया, उसके आभूषण चुराये, उसकी नृशंस हत्या की, कट्टर शत्रु होने पर भी आपने प्रतिदिन अपने भोजन में से आधा भोजन उसे देकर उसका पोषण किया। उससे दोस्ती की। क्या यह आपका अच्छा काम है कि जिससे मुझे खुशी हो ?''

यह सुनकर धन्ना को नाराजगी का असली कारण समझ में आया। भद्रा की गलतफहमी निकालना आवश्यक था। धन्ना ने कहा-''प्रिय भद्रे! तेरा सोचना और नाराज होना यथार्थ और स्वाभाविक है। मैंने उसे जो भोजन दिया, वह उसे अपना मित्र, स्नेही या सम्बन्धी समझकर नहीं दिया, बल्कि मजबूर होकर मुझे देना पड़ा। हम दोनों एक बेड़ी में जकड़े हुए थे। जब भी मुझे लघुनीत, बड़ीनीत की हाजत होती, मैं उसके सहयोग बगैर जा नहीं पाता था। आधा भोजन देने की उसकी माँग मुझे माननी पड़ी। यदि हम दोनों भिन्न-भिन्न बेड़ियों में जकड़े होते तो भोजन का एक कण भी मैं उसे किसी हालत में नहीं देता।'' भद्रा की समझ में आ गया कि मजबूरी के कारण ऐसा हुआ। दूसरा कोई चारा भी नहीं था।

उसका समाधान हुआ और वह पूर्ववत् पति-सेवा में लग गयी। विजय चोर की कारागृह में ही मृत्यु हुई और वह नरक में गया।

एक बार राजगृही नगरी में धर्मघोष आचार्य का पदार्पण हुआ। धन्ना सार्थवाह ने दीक्षा ली। संयम पाला। एक मास के संथारे से देह त्यागकर प्रथम सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा, दीक्षित होगा, संयम की आराधना करते हुए, मोक्ष प्राप्त करेगा।

उपसंहार

जैसे धन्ना और विजय चोर एक ही बेड़ी में जकड़े हुए थे, वैसे ही यह आत्मा और शरीर एक ही बंधन में बँधे हुए हैं। माना आत्मा धन्ना सेठ है और शरीर विजय चोर है। चोर लूट-मार में प्रवृत्त रहता है। उसी तरह यह शरीर इंद्रिय-विकारों में लुब्ध रहता है।

मित्र समझ कर नहीं, स्वार्थ सिद्ध करने के लिए धन्ना ने विजय चोर को भोजन दिया। इसी तरह शरीर को भी भोजन देना है, सिर्फ इसलिये कि शरीर साधना के लिए तन्दुरुस्त रह सके। इतनी मात्रा में ही भोजन दें कि साधना आसान हो, अधिक मात्रा से विकारों को पैदा न करें। आत्म-कल्याण के लिए शरीर अनिवार्य साधन है। साधक को चाहिये कि वह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द आदि विकारों के पोषण के लिए शरीर को आहार न दे।

◇◆◇

मयूरी के अण्डे

चम्पा नगरी में अनेक विद्वान और श्रीमन्त लोग बसते थे। सभी बातों की समृद्धि और विपुलता थी। नगरी के ईशानकोण में 'सुभूमि' नाम का मनोहर उद्यान था। उद्यान से आगे घना जंगल था। इतने घने वृक्ष थे कि सूरज की किरणें भी जमीन को छू नहीं पाती थीं।

चम्पा नगरी में जिनदत्त और सागरदत्त नाम के दो श्रेष्ठिपुत्र भी रहते थे। वे दोनों साथ जन्मे, साथ खेले, साथ पढ़े और साथ ही बड़े हुए। उनकी अटूट मैत्री थी। सारी चम्पा नगरी जानती थी कि दोनों मित्रों के शरीर दो हैं पर मन एक ही है। उनकी दोस्ती में किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं था। जहाँ भी जाते, साथ जाते थे। जो भी काम करते एक दूसरे की सहायता से करते।

एक दिन दोनों मित्र घूमते हुए उद्यान में गये। वृक्ष की छाया में बैठे। प्रकृति का आनन्द ले रहे थे। निसर्ग का सौन्दर्य आँखों में सँजोये जा रहे थे। उन्होंने देखा, धरती ने हरी शाल ओढ़ रखी है। लता और बेलें वृक्षों से लिपटकर आलिङ्गन कर रही हैं। नाना वर्ण के पुष्प खिले हुए हैं और महक रहे हैं। भौंरें मकरन्द पीते हुए गुँजारव कर रहे हैं। इस जंगल में प्रेम का कितना सजीव चित्रण है? दोनों मित्रों ने भी जिन्दगी भर यही प्रेम निभाने की कसमें लीं। वहीं उन्होंने तय किया कि एक

सप्ताह बाद घने जंगल में जायेंगे। वहीं वन भोजन करेंगे, घूमेंगे, प्रकृति की गोद में सारा दिन व्यतीत करेंगे।

दोनों अपने घर आये, नौकरों को बुलाया और आदेश दिया कि एक सप्ताह बाद वे जंगल में तम्बू लगायें। भोजन की सामग्री ले जायें और वहाँ पर रसोई का प्रबन्ध करें। खेलने और मनोरञ्जन के भी साधन वहाँ रहें। नियत दिवस पर दोनों मित्र उस वनखण्ड में गये। अरदली में उनके नौकर तो थे ही। आमोद-प्रमोद हुआ, भोजन हुआ, थोड़ी देर विश्राम हुआ और दोनों मित्र वन-शोभा देखने हेतु निकले। वे एक वृक्ष के पास से जा रहे थे कि सहसा पंखों की फड़फड़ाहट सुनाई दी, बाद में एक मयूरी की चीत्कार सुनाई दी। वह मयूरी नीचे की डाल से उड़कर वृक्ष की ऊँची चोटी पर जा बैठी। हुआ यह कि उस मयूरी ने नीचे की डाल पर दो अण्डे दिये हुए थे, जब उसने इन दो मित्रों को आते देखा। ये अण्डे लेने आ रहे हैं, ऐसा सोच उसने चीत्कार किया और प्राण-रक्षा के लिए वह ऊपर जा बैठी। दोनों मित्रों के मन में कुतूहल जागा-'मयूरी ने चीत्कार क्यों किया? देखें तो सही।' वे उस वृक्ष की डाली के पास गये। उन्होंने देखा मयूरी ने अभी-अभी दो सुन्दर अण्डे दिये हैं। उन्हें खुशी हुई। सोचने लगे-''आज के दिवस की यादगार में ये अण्डे घर ले जायें, उनकी देखभाल करें। यथासमय इनमें जो मोर पैदा होंगे, वे अपने नृत्य से घर की, मोहल्ले की और शहर की शान (रौनक) बढ़ायेंगे।'' दोनों ने एक-एक अण्डा लिया, अपने

नौकरों के सुपूर्द किया और उन्हें हिदायत दी कि उसकी देखभाल करें। दोनों मित्र अपने घर आये।

सुबह हुई। सागरदत्त उठा। जहाँ पर नौकरों ने अण्डा रखा था, वहाँ गया। अण्डा हाथ में उठाया, हिलाया, बजाया। कान के पास ले गया कि आवाज तो आ ही नहीं रही ? बार-बार उसे शंका होती। 'इस अण्डे से मोर पैदा होगा भी या नहीं ?' प्रतिदिन उसका यही क्रम बना रहा। अण्डा उठाना, हिलाना, बजाना, शंका करना। परिणाम यह हुआ कि बार-बार हिलाने से और शंका करने से अण्डा निर्जीव बन गया। उससे कुछ भी पैदा नहीं हो सका।

इधर जिनदत्त के घर, जहाँ नौकरों ने अण्डा सुरक्षित रखा था, जिनदत्त सिर्फ जाता, देखता, प्रसन्न होता, इसमें से मोर ने जन्म लिया है और वह मनोहर नृत्य कर रहा है, ऐसी कल्पना करता। उसने कभी अण्डे को छुआ नहीं, हिलाया नहीं, न मन में कोई शंका लाया।

यथा समय जिनदत्त के घर मोर पैदा हुआ। बड़ा होकर नृत्य करने लगा, घर की और मोहल्ले की शान बन गया।

एक दिन जिनदत्त ने सागरदत्त को उसकी गलती बता दी। उसे समझाया। सागरदत्त के उतावले और शंकाशील स्वभाव से उसे दुःखी होना पड़ा।

उपसंहार

जो साधक जिनेश्वर प्ररूपित सिद्धान्त, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और संयम में विश्वास नहीं रखते, शंकाएँ करते हैं, वे सागरदत्त की तरह दु:खी होते हैं। जो साधक जिनाज्ञा में श्रद्धा रखते हैं, पूरी श्रद्धा के साथ पालन करते हैं, अपनी साधना के फल में शंकित नहीं होते, वे जिनदत्त के समान सुख पाते हैं।

भगवान महावीर ने भी कहा है–

नाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहे।

सम्यग्ज्ञान के द्वारा जीव तात्त्विक पदार्थों को जान लेता है। दर्शन के द्वारा उस पर श्रद्धा हो जाती है।

◇◆◇

दो कछुए

वाराणसी नाम की नगरी थी। पास में गंगा नदी बह रही थी। उस गंगा नदी के किनारे एक 'मृतगंगा' नाम का ह्रद (कुण्ड) था। उसके चारों तट सुशोभित थे। सुन्दर पत्थरों पर नक्काशी की हुई थी। कुण्ड का जल गहरा, शीतल तथा स्वच्छ था। रंग-बिरंगे कमलों से और कमल-पत्रों से वह दर्शनीय बन गया था। उस विशाल कुण्ड में अनेक मच्छ और कछुए रहते थे। कुण्ड के चारों तरफ लता और बेलों के मण्डप बने हुए थे।

कुण्ड से थोड़ी दूरी पर मालुका कच्छ नाम का वनखण्ड था, जिसमें अनेक हिंसक पशु रहते थे। उनमें दो सियार भी थे। उनमें गहरी दोस्ती थी। दिन भर वे गहरी झाड़ी में छिपे रहते और रात को शिकार की टोह में साथ-साथ निकलते।

एक दिन रात में जब नीरव शान्ति थी, उस कुण्ड से दो कछुए बाहर आये, चारों तरफ सुरक्षा की दृष्टि से देखा और अपनी आजीविका ढूँढ़ते हुए घूमने लगे। उसी समय वे दोनों सियार भी शिकार खोजने निकले थे। एक बड़े वृक्ष की आड़ में छिपकर वे इन कछुओं को निहारकर उन पर झपटने का मौका साध रहे थे।

दोनों कछुओं की नज़र उन सियारों पर पड़ी। तब उन्हें अपने सामने आने वाले खतरे का आभास हुआ। दोनों सियार उन पर झपटने दौड़ पड़े लेकिन दोनों कछुओं ने अपने हाथ-पैर और गर्दन को शरीर के अन्दर समेट लिया (गोपन किया)। वे निश्चल मृतवत् पड़े रहे। वे सियार वहाँ आये। आकर कछुओं को सब तरफ से फिराने लगे, सरकाने लगे, हटाने लगे, चलाने लगे। लेकिन वे उन कछुओं की चमड़ी का छेदन न कर सके। यह प्रक्रिया उन्होंने कई बार की, परन्तु कछुओं ने अपने अङ्ग-उपाङ्ग शरीर से बाहर नहीं निकाले। अन्त में दोनों सियार शरीर से थक गये, मन से टूट गये, निराश और मायूस हो गये और दूर जाकर एक वृक्ष के नीचे मौन खड़े हो गये। दोनों में से एक कछुए ने उन्हें दूर गया जानकर अपने हाथ-पैर, ग्रीवा बाहर निकाली। सियारों ने देख लिया। चतुराई से काम लेना था। अत: उन्होंने लुकते-छिपते पीछे से आकर उस कछुए को झपट लिया, उसका मांस खाया और उसे प्राणरहित कर दिया।

दूसरा कछुआ वैसा ही मृतवत् पड़ा रहा। उसने कोई उतावली नहीं की। उसके भी पीछे सियार पड़े। परन्तु आखिर हारकर जंगल में चले गये। काफी देर के बाद दूसरे कछुए ने हालात का जायजा लिया। खतरा टल गया है, इसकी पुष्ट जानकारी होने के बाद उसने अपने हाथ-पैर बाहर निकाले और तेजगति से चलते हुए कुण्ड के पास आया और कुण्ड में कूद पड़ा। तब उसने राहत की साँस ली।

उपसंहार

कछुए के चार पाँव और गर्दन मानों साधक की पाँचों इन्द्रियाँ हैं। पहले कछुए ने अपने पाँचों अवयवों का गोपन नहीं किया और उसे प्राण-रहित होना पड़ा। दूसरे ने गोपन किया, वह सुखी रहा।

भगवान महावीर कहते हैं-

जहा कुम्मे स अंगाई, सए देहे समाहरे।
एवं पावाइं मेहावी, अज्झप्पेण समाहरे।।
साहरे हत्थपाए य, मणं पंचिंदियाणी य।
पावगं च परिणामं, भासा दोसं च तारिसं।।

हे साधक! जैसे कछुआ अपना अहित होता देख कर अपने अंगोपांगों को अपने शरीर में सिकोड़ लेता है, उसी तरह पण्डितजन भी विषयों की ओर जाती हुई अपनी इन्द्रियों को आध्यात्मिक-ज्ञान से संकुचित कर रखते हैं। इन्द्रियों द्वारा पाप कर्म नहीं करते। मन की चपलता को, विषयों की तरफ दौड़ने वाली इन्द्रियों को, पाप के अभिप्राय को और सावद्य भाषा को और रोके रखते हैं।

◇◆◇

थावच्चापुत्र

द्वारिका नगरी तो प्रत्यक्ष कुबेर की बुद्धि से बनी थी। सुवर्ण के कोट थे, रत्नों के कंगूरे थे। परम प्रतापी श्रीकृष्ण वासुदेव वहाँ राज करते थे। द्वारिका में थावच्चा नाम की एक गृहिणी रहती थी। उसके पास जमीन, जायदाद, सोना, चाँदी, रत्न, पशु, नौकर-चाकर आदि विपुल सम्पत्ति थी। पुत्र एक ही था, उसका नाम माता के नाम से प्रसिद्ध हो गया था, इसलिए उसे थावच्चापुत्र कहते थे। वह रूपसम्पन्न था, बलसम्पन्न था, विद्यासम्पन्न और गुणी था। सभी कलाओं में निष्णात था। 32 इभ्य कन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ था। अलग-अलग 32 महल थे। वह अपनी पत्नियों के साथ संसार के भोगोपभोगों में लिप्त होकर आराम और चैन की जिन्दगी व्यतीत कर रहा था।

बावीसवें तीर्थङ्कर श्री अरिष्टनेमि भगवान भारत वर्ष में धर्मोपदेश देते हुए विचर रहे थे। उनका एक बार द्वारिका में आगमन हुआ। जैसे ही यह खबर शहर में पहुँची, नगर जन उनके पवित्र दर्शन करने और उनकी पीयूषमय वाणी सुनने के लिए उद्यान की तरफ आने लगे। भगवान तो श्रीकृष्ण वासुदेव के चचेरे भाई थे। श्रीकृष्ण भी दर्शनार्थ आये। थावच्चापुत्र भी दर्शनार्थ आया।

सभा को प्रतिबोधित करते हुए प्रभु ने श्रावक के बारह व्रतों का

विवेचन किया। संसार की अनित्यता और निस्सारता पर प्रकाश डाला। उनका प्रतिपाद्य था–''मानव–जीवन में मर्यादाओं का होना आवश्यक है।'' नदी जब तक दो किनारों की मर्यादा में बहती है, तब तक वह जीवनदायिनी भी है, उपकारी भी है। लेकिन बाढ़ में जब किनारों से बाहर आ जाती है, तब विप्लव मचाती है और अत्यन्त नुकसान करती है। अत: श्रावक को भी अपनी सुरक्षा के लिए बारह व्रतों को ग्रहण कर अपनी शक्ति के अनुसार मर्यादा कर लेनी चाहिये।

पहले व्रत के अनुसार श्रावक किसी भी छोटे–बड़े त्रस जीवों की संकल्प पूर्वक हिंसा न करें। दूसरे व्रत के अनुसार श्रावक सिर्फ सत्य का ही प्रयोग करें। सत्य बोलें और सत्य ही लिखें। किसी पर झूठा दोषारोपण न करें। किसी पर झूठा आरोप न लगायें। तीसरे व्रत के अनुसार किसी भी व्यक्ति की, समाज की, राज्य की (कर चोरी) न करें। व्यापार में प्रामाणिकता बरतें। चौथे व्रत में श्रावक स्व–स्त्री के अलावा किसी अन्य स्त्री का सेवन न करें। विषयलम्पट न बनें। पाँचवें व्रत के अनुसार अपने पास आवश्यकता से ज्यादा धन–संग्रह न करें। अपने अधीन नौकर–वर्ग, पशुधन आदि में भी मर्यादा हो और मूर्च्छाभाव न हो। छठे व्रत में श्रावक दिशाओं की मर्यादा बाँध लें। उससे आगे न जावे। सातवें व्रत में श्रावक अपने दैनन्दिन कार्य, खानपान, साग–भाजी, फल–फूल तथा उपभोग की वस्तु की मर्यादा कर लें। आठवें व्रत में किसी भी प्रकार की अकारण हिंसा न करें। अनर्थदण्ड का त्याग करें। नवमें व्रत में समभाव की साधना करें। दसवें व्रत में 14 नियम संवर आदि का प्रत्याख्यान करें। ग्यारहवें व्रत में श्रावक पौषधव्रत

नियमित रूप से करता रहे। बारहवें व्रत में घर आये सन्त, सती, अतिथि को सम्मानपूर्वक आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, औषधि आदि वस्तुएँ उनकी आवश्यकतानुसार शुद्ध भाव से दान करें।

भगवान अपने प्रवचन में फरमा रहे थे–''इस जीव को चार बातें मिलना दुर्लभ हैं–1. मानवता, 2. धर्म–श्रवण, 3. सुने हुए धर्म पर श्रद्धा और 4. संयम में पराक्रम।''

किसी जीव को मानव देह तो मिल जाती है, परन्तु वह जिन्दगी भर हैवान बना रहता है। जैसे कि कसाई, हत्यारे, चोर, लुटेरे आदि। मान लो कोई मानवता के गुणों से युक्त है तो उसे धर्म–श्रवण का लाभ नहीं मिलता। धर्म–श्रवण का लाभ भी मिल गया तो श्रुत–धर्म पर उसकी श्रद्धा होना और भी मुश्किल होती है। श्रद्धा भी हो जाये तो संयम का आचरण रूप पुरुषार्थ करना अत्यन्त ही कठिन है।

असंख्य भवों के बाद जब आत्मा में शुद्धि आती है, तब आत्मा मानव देह धारण करती है। मानव देह का प्रयोजन है, पूर्वसंचित कर्मों का क्षय–निर्जरा करना। निर्जरा दो प्रकार से होती है। उदय में आए हुए कर्मों को सहज भाव से भोग लेने से या तप संयम द्वारा कर्मों का क्षय करने से। पहला रास्ता लम्बा है, दूसरा आसान और छोटा है।

धन, धाम, धरा, सुत, दारा, भगिनी स्वजन साथ छोड़ेंगे।
जीवन की अन्तिम वेला में, रिश्ते नाते तोड़ेंगे।।
यह क्रम चलता रहा आदि से, अब भी चलता भाई।
संयोगों का एक मात्र फल, केवल सदा जुदाई।।

उपदेश–श्रवण से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने बारह व्रत

अंगीकार किये, कई श्रोताओं ने दीक्षा लेने के भाव प्रदर्शित किये। कई त्याग-प्रत्याख्यान हुए। परिषदा लौट गयी। थावच्चापुत्र ने भगवन्त की सम्पूर्ण देशना सुनी। उस पर प्रवचन का जादुई असर हुआ। संसार की सारी बातें निस्सार प्रतीत होने लगीं। आत्मा ही नित्य है। यह शरीर, कुटुम्ब-कबीले, रिश्ते-नाते, धन-दौलत ये सब बाहरी संयोग मात्र हैं। जहाँ संयोग है, वहाँ वियोग भी है। हम कहने को तो कहते हैं सात पीढ़ियों तक चले इतना धन हमारे पास है। यह भी दर्पोक्ति है क्योंकि हमारा पुण्य क्षीण होने से या तो लक्ष्मी चली जायेगी या लक्ष्मी घर में बनी रही तो कभी न कभी हम उसे छोड़ कर चले जायेंगे। जब वियोग ही होना है तो संयोग ही क्यों बढ़ाये ? थावच्चा-पुत्र का मन वैराग्य में रम गया।

वह अपनी माता के पास आकर बोला-''माताजी! आज मैंने प्रभु नेमिनाथजी का प्रवचन सुना। उनका उपदेश मुझे हितकर प्रतीत हुआ। संसार के भोगों से मेरा मन भर गया है। वैराग्य के भाव मन में उत्पन्न हुए हैं। इस संसार-समुद्र में जन्म-मरण के गोते लगाने की अपेक्षा मोक्ष-लक्ष्मी का वरण करना चाहता हूँ। इस मार्ग पर अग्रसर होने के लिए चारित्र (संयम) ग्रहण करना जरूरी है। आप मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा प्रदान करें और मेरे आत्मकल्याण में सहायक बनें।''

माँ ने जैसे ही यह वचन सुने, वह बेहोश हो गयी। वह उसका एक मात्र पुत्र था, जीवन-सर्वस्व था। अपार सम्पत्ति थी। अगर माता के जीवन से वह अकेला पुत्र निकल जाये तो माता के जीवन में क्या बचेगा ? होश में आने पर उसने अपने पुत्र को नाना तरह से समझाया।

संयम-जीवन के कठिन परिषहों का वर्णन किया। डराया, धमकाया, संसारी पदार्थों के प्रलोभन बताये, साम, दाम, दण्ड, भेद चारों नीतियाँ चलाकर देखी परन्तु थावच्चापुत्र को अपने निर्णय से डिगा न सकी। अन्ततः वह परास्त हुई। फिर भी आशा का एक अंकुर उसके मन में निकल आया। क्यों नहीं वह श्रीकृष्ण वासुदेव से मिले और अपना दुःख-दर्द सुनाये। सम्भव है उनके कहने और समझाने से थावच्चापुत्र मान जाये, अपना विचार बदल ले।

श्रीकृष्ण भी आये, उन्होंने भी थावच्चापुत्र को समझाया, संयम का विचार छोड़ देने के लिए कहा। आश्वासन दिया कि यदि वह श्रीकृष्ण की छत्रछाया में आ जाता है तो श्रीकृष्ण उसकी सर्वोपरि रक्षा करेंगे और सर्व अनुकूलता उपलब्ध करा देंगे।

थावच्चापुत्र ने वासुदेव श्रीकृष्ण को जवाब में कहा-"महाराज! आपके सुझाव के लिए धन्यवाद। आप मेरी सर्व तरह से रक्षा करेंगे। यदि आप मेरी मृत्यु और जरा से रक्षा का भी अभिवचन दें तो मैं आपकी छत्रछाया में आने को तैयार हूँ।" श्रीकृष्ण निरुत्तर हो गये। माँ ने भी अनुमति दे दी। महाभिनिष्क्रमण के लिए छत्र, चामर दण्ड आदि राजचिह्नों की आवश्यकता थी। श्रीकृष्ण ने कहा-"दीक्षा की सारी जिम्मेदारी मेरी है। इतना ही नहीं सारी द्वारिका में घोषणा करवा दी कि थावच्चापुत्र दीक्षा ले रहे हैं। उनके साथ और जो भी कोई दीक्षा लेना चाहेगा, श्रीकृष्ण उनका सत्कार करेंगे और दीक्षार्थी के कुटुंब के भरण-पोषण का प्रबन्ध भी करेंगे।" सारे शहर में घोषणा करवा दी गयी। घोषणा सुन कर एक हजार लोग सामने आये। जिनका थावच्चापुत्र

पर अनुराग था, स्नेह था। महाभिनिष्क्रमण की तैयारी हुई। थावच्चापुत्र भगवान नेमिनाथ जी के सामने हजार दीक्षार्थियों के साथ उपस्थित हुए। स्वयं पंचमुष्टि लोच किया और हजार पुरुषों के साथ भगवान के पास दीक्षित हुए। भगवान ने हजार नवदीक्षित सन्त थावच्चापुत्र को शिष्य रूप में सौंपे।

थावच्चापुत्र ने सामायिक से लगाकर चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। पाँच समिति-तीन गुप्ति से युक्त होकर विचरने लगे। भगवन्त की आज्ञा लेकर उन्होंने अपने हजार शिष्यों के साथ जनपद में विहार किया। ग्रामानुग्राम विचरते हुए थावच्चापुत्र मुनि शैलकपुर आये। यहाँ के राजा का नाम शैलक था। शैलक राजा ने व्याख्यान सुना और सभा में खड़े होकर कहा-''मुनिवर! आपका उपदेश यथार्थ है, सत्य है। लेकिन मैं दीक्षा लेने में असमर्थ हूँ। मैं आपके पास बारह व्रत अंगीकार करना चाहता हूँ।'' राजा के साथ पंथकादि 500 मन्त्री भी बारह व्रत धारण करने खड़े हुए। थावच्चापुत्र मुनिवर ने उन्हें यथाविधि बारह व्रत ग्रहण करवाये।

इसी आर्यावर्त में सौगन्धिका नाम की नगरी थी। उसमें सुदर्शन नाम का एक दयालु सेठ रहता था। एक बार शुक नाम का संन्यासी वहाँ आया। वह सांख्य मत का अनुयायी था और शौचधर्म का प्रचार करता था। मिट्टी, पानी और अभिषेक से अंतर-बाह्य सभी प्रकार की शुद्धि हो जाती है, यह उसकी मान्यता थी। सेठ सुदर्शन ने शुक संन्यासी से शौचधर्म स्वीकार तो किया लेकिन वह सशंक बना रहा। शुक मुनि अन्यत्र चले गये।

इस सौगन्धिका नगरी में थावच्चापुत्र मुनिवर का आगमन हुआ। उसके उपदेश से सुदर्शन सेठ प्रभावित हुआ। उसने मुनिवर से पूछा–''आपके धर्म का मूल क्या है ?'' मुनि ने उत्तर दिया–''सुदर्शन! धर्म का मूल विनय है। यह दो प्रकार का है –आगार विनय और अनगार विनय।'' उनके स्वरूप का विस्तार से विवेचन करते हुए मुनिवर ने समझाया–''क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि का नाश करना ही सच्ची शुद्धि है। यदि मिट्टी, पानी से शुद्धि हो जाती तो मिट्टी या खेतों में काम करने वाले मजदूर, किसान आदि और पानी में रहने वाले मगरमच्छ, गंगा में स्नान करने वाले यात्री, ये लोग क्यों दु:खी होते ?''

सेठ सुदर्शन को यह उपदेश जँचा। उसने शौच–धर्म त्यागकर आगार–धर्म ग्रहण किया। यह बात शुक संन्यासी को मालूम पड़ते ही वह अपने शिष्य को समझाने सौगन्धिका नगरी लौट आया।

सुदर्शन ने कहा–''मैंने थावच्चापुत्र मुनिवर से श्रावकव्रत ग्रहण कर लिया है और वे मुनिवर भी इसी नगरी में अन्यत्र ठहरे हुए हैं।

शुक संन्यासी थावच्चापुत्र मुनि को वाद–विवाद, धर्म–चर्चा में हराकर अपना प्रभुत्व जमाना चाहता था। इस उद्देश्य से वह भी मुनिवर के पास गया। लम्बे समय तक वाद–विवाद चलता रहा। शुक संन्यासी ने मुनिवर से चार प्रश्न पूछे। (1) क्या आपके धर्म में यात्रा है ? (2) यज्ञ है ? (3) अव्याबाध है ? (4) प्रासुक आहार–विहार है ?

मुनिवर का उत्तर था–''हाँ, यह सब हमारे धर्म में हैं। (1) ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना हमारी धर्म–यात्रा है। (2) पाँचों

इन्द्रियों का निग्रह करना और कषायों पर विजय पाना हमारा यज्ञ है। (3) शरीर में कोई व्याधि उत्पन्न नहीं होती, तब तक शारीरिक अव्याबाध है। अन्तर में क्रोधादि कषाय और रागद्वेषादि विकार उत्पन्न न होवें तब तक आत्मिक अव्याबाध है। (4) स्त्री, पशु, पंडग (नपुंसक) रहित निर्जन स्थान में रहना हमारा प्रासुक विहार है। हमारे लिये लाया हुआ, बना हुआ, खरीदा हुआ, एक ही घर का औद्देशिक आहार न लेना, यह हमारा प्रासुक आहार है।

उनका तेज, आत्मविश्वास एवं तर्क शुद्ध प्रतिपादन सुनकर शुक संन्यासी प्रभावित हुआ। उसने अपनी मान्यता, शौच-धर्म का त्याग किया। अपने 1000 परिव्राजकों के साथ उसने थावच्चापुत्र मुनि से दीक्षा ग्रहण की। चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। जनपद में विचरने लगे। मुनि थावच्चापुत्र ने पुंडरीक गिरि पर आरोहण किया, एक महीने का पादपोपगमन संथारा धारण कर, देह त्यागकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गये।

शुक मुनि अपने 1000 शिष्यों के साथ शैलकपुर पधारे। राजा शैलक भी पंथकादि अपने 500 मन्त्रियों के साथ प्रवचन सुनने आया, वैराग्य उत्पन्न हुआ। अपने पुत्र मंडुक को राज्यभार सौंपकर राजा शैलक ने अपने 500 मन्त्रियों के साथ दीक्षा ले ली और विहार कर गये। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए शैलकमुनि एक बार शैलकपुर के करीब आए। राजा मंडुक को समाचार मिला, वह भी अपने संसार पक्ष के पिता को वन्दन करने आया। उसने शैलकमुनि की व्याधिग्रस्त अवस्था, कृश शरीर देखकर चिन्ता व्यक्त की। वह शैलकमुनि से

बोला–''मुनिवर! आप शहर में पधारिये, मेरे राजमहल के एक हिस्से में आप ठहरिये। मैं अपने वैद्य एवं धन्वंतरियों द्वारा साधु के लिए उचित रीति से आपका इलाज करवाऊँगा। मुझे विश्वास है आप पूर्ववत् स्वस्थ एवं साधना के लिए पात्र हो जायेंगे।''

शैलकमुनि को यह प्रस्ताव पसंद आया। वे राजमहल में आकर ठहरे। नियमित इलाज से जल्दी ही वे व्याधिमुक्त हुए, उनकी शरीर कान्ति निखर आई। परन्तु वहाँ की सुख-सुविधा, सेवा और स्वादिष्ट आहार के आकर्षण से उन्होंने विहार नहीं किया, वहीं ठहरे रहे। धीरे-धीरे शिथिलाचारी बन गये। मादक पदार्थ आदि का सेवन करने लगे। शिष्यों ने बार-बार समझाया, विहार करने को कहा लेकिन कुछ भी निष्पन्न नहीं हुआ। अत: पंथकमुनि को उनकी सेवा में रख 499 मुनियों ने वहाँ से विहार कर दिया। परन्तु शैलकमुनि तो वहाँ के पौद्गलिक सुखों में इतने आकंठ डूब गए कि विहार कर परिषह सहने की इच्छा ही न रही। समय तो पंख लगाकर उड़ रहा था। कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा और सन्ध्या का समय था। मादक नशे में शैलकमुनि सोये हुए थे। किसी का स्पर्श हुआ। तन्द्रा टूटी। क्रोध में उबलते हुए बोल पड़े- ''कौन है यह अप्रार्थित का प्रार्थी, जिसने मेरी नींद में व्यवधान डाला है ?''

उनके शिष्य पंथक ने जवाब दिया-''गुरुदेव, मैं हूँ पंथक आपका शिष्य। आज चातुर्मासिक पक्खी है। प्रतिक्रमण कर मैं खमतखामणा और गुरुवंदन के लिए आपके पास आया हूँ। आपके चरण पर मस्तक रखते हुए अन्धेरे के कारण कुछ अधिक धक्का लग गया। मैं अपराधी हूँ, क्षमाप्रार्थी हूँ। आप मुझे क्षमा करें, मुझे प्रायश्चित्त दें।''

पंथक के ये नम्रता भरे वचन शैलकमुनि ने सुने। चिन्तन शुरू हुआ। आज चातुर्मासी, फिर भी मैंने प्रतिक्रमण नहीं किया। मैं राजा था। आत्मकल्याण के लिए मैंने अपनी राज्यलक्ष्मी का त्याग किया, दीक्षा ली, कठोर तपश्चरण किया, ज्ञान की आराधना की। लेकिन अब खानपान, मादक पदार्थों के सेवन और पौद्गलिक सुखों में लुब्ध बन गया हूँ। इतने वर्षों का पाला हुआ संयम, मैंने यहाँ आकर लुटा दिया। मेरे शिष्य भी मुझे छोड़ गये हैं। कितना पतन हुआ है मेरा ?

वे बार-बार अपनी आत्मा को धिक्कारने लगे। पंथक से क्षमा माँगी। दूसरे दिन ही विहार कर दिया। संयम में स्थिर हो गये। 499 शिष्य भी वापस आकर उनकी आज्ञा में शामिल हुए। अनेक वर्ष संयम की आराधना की। पुंडरीक गिरि पर एक माह का संथारा लेकर संसार-चक्र से मुक्त हुए।

उपसंहार

जो कोई साधु दीक्षा लेने पर शैलक राजर्षि-समान प्रमादी बन जाता है, ज्ञान, ध्यान, वैराग्य को भूल जाता है, भौतिक सुखों में लुब्ध होता है, वह इहलोक में निंदापात्र बनता है, संसार-भ्रमण करता है।

जो साधु प्रमाद रहित होकर संयम की सम्यक् आराधना करता है, वह चारों तीर्थों में वन्दनीय, पूजनीय होकर मुक्ति को प्राप्त करता है।

◇◆◇

तुम्बा

राजगृही में भगवान महावीर का प्रवचन हुआ। प्रवचन के उपरान्त परिषद लौट गयी। तब गौतम स्वामी ने जिज्ञासावश भगवान से प्रश्न किया–''प्रभो! किस प्रकार जीव शीघ्र ही गुरुता को प्राप्त करता है ?''

भगवान महावीर ने तुम्बे का दृष्टान्त देते समझाया–

जह मिउलेवालित्तं गुरुयं, तुंबं अहो वयइ एवं।
आसवकयकम्मगुरु, जीवा वच्चंति अहरगइं।।

गौतम! कोई पुरुष एक बड़े सूखे और छिद्र रहित तुम्बे को लेवें। उस पर डाभ के, दूब या रस्सी के आवरण चढ़ावे, उस पर मिट्टी के लेप देकर धूप में सुखावे, सूख जाने पर पुन: दर्भ और कुश लपेटे, उस पर मिट्टी को लेप देवे, धूप में सुखावे। यह प्रक्रिया आठ बार करे। फिर एक गहरे जलाशय में वह तुम्बा छोड़ दे तो वह अपने ऊपर मिट्टी के लेपों के कारण जलाशय के निम्नतम स्तर पर चला जायेगा। इसी तुम्बे के समान जो जीव अठारह पाप–स्थानों का सेवन करता है–त्याग प्रत्याख्यानों से अपने को सीमित दायरे में नहीं लाता, वह भी पृथ्वी की निचली सतह (नरक) पर चला जाता है। यही जीव की गुरुता है।

गौतम–''प्रभो ! जीव लघुता को कैसे प्राप्त होता है ?''

भगवान–''गौतम ! इसी दृष्टान्त से समझाता हूँ।

तं चेव तव्विमुक्कं, जलोवरिं ठाइ जाय लहुभावं।
जह तह कम्मविमुक्का, लोयग्गपइट्ठिया होंति।।

हे गौतम! वही तुम्बा जो तल को स्पर्श कर रहा है, उस पर से मिट्टी का लेप कुछ घुल जाने पर, तल से थोड़ा ऊपर उठेगा। इस तरह तुम्बे के आठों लेप पानी में घुल जाने से तुम्बा हल्का होकर पानी की सतह पर तैरने लगेगा। उसी तरह जीव की कर्मरज जैसे–जैसे नष्ट होगी वैसे–वैसे जीव हल्का होकर ऊपर उठेगा। आठ लेप अर्थात् 1. ज्ञानावरणीय 2. दर्शनावरणीय 3. वेदनीय 4. मोहनीय 5. आयु 6. नाम 7. गोत्र और 8. अन्तराय कर्म हैं। इन कर्मों का आवरण समाप्त होते ही जीव ऊपर उठेगा। नीचे की गति अर्थात् नरक गति है। ऊपर की गति अर्थात् स्वर्ग या मोक्षगति है।

इस तरह जीव कर्मरहित होने पर हल्का होता है।

उपसंहार

प्राणातिपातादि 18 पाप स्थानों (1) प्राणातिपात, (2) मृषावाद, (3) अदत्तादान, (4) मैथुन, (5) परिग्रह, (6) क्रोध, (7) मान, (8) माया, (9) लोभ, (10) राग, (11) द्वेष, (12) कलह, (13) अभ्याख्यान, (14) पैशुन्य, (15) परपरिवाद, (16) रति–अरति, (17) माया–मृषावाद और (18) मिथ्यादर्शन–शल्य के सेवन से जीव

गुरुत्व को प्राप्त होता है। आठ कर्मों का नाश होने पर जीव हल्का होकर लोकाग्र पर स्थित होता है।

आस्रव द्वारा उपार्जित कर्मों से भारी हुए जीव अधोगति प्राप्त करते हैं, नीच योनि में उत्पन्न होते हैं। कर्मों से छुटकारा पाने पर जीव लघु होकर ऊर्ध्व लोक के अग्रभाग पर स्थित हो जाते हैं।

आत्मा अधोगति और उच्चगति किस कारण से प्राप्त करता है ? यह जाने बिना उच्च गति के लिए प्रयास नहीं किया जा सकता और इस प्रयास के बिना आत्मिक शुद्धि नहीं हो सकती।

आत्मा उपमेय है। तुम्बा उपमान है। तुम्बा स्वभाव से हल्का है। मिट्टी स्वभाव से भारी है। मिट्टी के संग तुम्बा हल्का होते हुए भी डूब जाता है। निर्लेप होने पर ऊपर आता है।

आत्म-शुद्धि के लिए कर्मों के भार से हल्का बनना चाहिये।

◇◆◇

रोहिणी

महाराज श्रेणिक की राजगृही नगरी में धन्ना सार्थवाह नाम का एक सेठ था। धन-दौलत थी, मान-सम्मान था, प्रतिष्ठा थी, राज-दरबार में भी उनकी सलाह मानी जाती थी। उनके चार पुत्र थे-(1) धनपाल, (2) धनदेव, (3) धनगोप और (4) धनरक्षित। उनकी पत्नियों के नाम अनुक्रम से (1) उज्झिया, (2) भोगवती, (3) रक्षिता और (4) रोहिणी थे।

एक रात्रि में सेठ को विचार आया। 'आज मेरी राजगृही में प्रतिष्ठा है, सम्मान है, लोग मेरी राय लेते हैं, सम्पत्ति है इसलिये दान भी कर सकता हूँ। लेकिन मेरी गैरहाजरी में या मेरी मृत्यु के पश्चात् या मैं अपंग या परावलम्बी बन जाऊँ तो यह सारा कारोबार कौन सँजोये रखेगा, कौन इसमें वृद्धि करेगा ? यह समझना, जानना और जाँच करना जरूरी है। मेरी इन चार बहुओं में से किसमें कितनी पात्रता है ? इसकी परीक्षा लेकर जाँच करनी चाहिये। मैं तो अब वृद्ध हो गया हूँ। कभी भी मृत्यु आ सकती है, इन्द्रियाँ कार्य-अक्षम बन सकती हैं।' चिन्तन करते-करते एक कल्पना स्फुरित हुई और धन्ना सेठ को अच्छी नींद आई।

दूसरे दिन धन्नासेठ ने ज्ञातिभोज का आयोजन किया। अपने मित्र, सगे-सम्बन्धी सबको भोजन पर आमन्त्रित किया। भोजन के पश्चात् सभी उपस्थित ज्ञातिजनों के समक्ष अपनी सबसे बड़ी पुत्र-वधू को बुलाया। उसके हाथ पर पाँच शालि (चावल) के दाने रखे और कहा-''देखो बेटी! ये शालि के दाने सम्भालकर रखना और जब मैं माँगू, तब मुझे देना।''

बड़ी पुत्रवधू ने तो सबके सामने विनय के साथ वे पाँच दाने ले लिये। अपने कमरे में आई। खिड़की से बाहर रास्ते पर उन्हें फेंक दिया। मन ही मन कहने लगी। ससुरजी तो सठिया गये हैं। बिरादरी के सामने कोई अनमोल उपहार मिलेगा यह धारणा थी। मिले क्या ? शालि के पाँच दाने।

दूसरी बहू को बुलाया। पाँच दाने हाथ पर रखे। उसी तरह कहा। वह अपने कमरे में गयी। दाने मसले। छिलका उतारा और दाने खा गई।

तीसरी बहू ने ससुर से दाने लिये। अपने कमरे में आई। 'दाने सम्भाल के रखना, मैं माँगू तब देना' शब्दश: अर्थ ग्रहण किया। रेशमी कपड़ा लिया। उसमें चावल के धान के दाने रखे। वह पोटली गहनों की पेटी में रखी और वह पेटी तिजोरी में रख दी।

अब सबसे छोटी बहू रोहिणी की बारी थी, वह आई। उसने भी पाँच दाने ग्रहण किये। अपने कमरे में आयी। वह सोचने लगी 'मेरे

ससुर इतने मूर्ख तो नहीं कि पाँच दाने पुत्रवधू को देने के लिए इतना बड़ा ज्ञातिभोज करे और दिये हुए दाने जब माँगू तब देना, जैसी शर्त रखें। जरूर इसमें कोई रहस्य है। उसने वे शालि के दाने अपने पीहर भिजवाये। भाई एवं नौकरों को हिदायत दी उन्हें वर्षा के समय क्यारी में बोयें। जो भी फसल आयेगी, वही बार-बार बोते रहें।

चार वर्ष बीत गये। धन्ना सेठ को याद आ गई। उसने फिर एक दिन ज्ञातिभोज का आयोजन किया। वे सारे लोग भोजन पर बुलाये, जो पहले बुलाये गये थे। भोजन के पश्चात् सबके सामने पुत्रवधुओं को बुलाया गया। शालि के पाँच दाने माँगे और उनकी रक्षा किस तरह की, इसका सत्य बयान देने का आग्रह किया।

(1) बड़ी पुत्रवधू ने 5 दाने ला दिये तथा कहा-''घर में चावल के गोदाम भरे थे। चाहे जब मैं पाँच दाने दे सकती थी। मैंने उन्हें उसी समय रास्ते पर फेंक दिया था। ये दाने गोदाम के बोरों में से लाई हूँ।''

(2) दूसरी पुत्रवधु ने भी यही कहा,-इतना ही कि उसने फेंके नहीं, खा लिये।

(3) तीसरी पुत्रवधू ने कहा-''पिताजी ये वही दाने हैं जो आपने दिये थे। मैंने उन्हें तिजोरी में सुरक्षित रखे थे।

(4) चौथी और छोटी बहू ने कहा-''पिताजी वे पाँच दाने लाने

के लिए पच्चीस गाड़ियों का प्रबन्ध करो। मैंने उन्हें हर साल बुआई कर फसल करवा ली।

सेठजी ने सब उपस्थितों को सम्बोधित करते हुए कहा–''भाइयों! आप को ताज्जुब हुआ होगा कि पाँच शालि के दाने देकर वापस माँगने की नौबत क्यों आई ? यह पात्रता सिद्ध करने की परीक्षा थी। पात्रता के अनुसार जिम्मेदारी सौंपने में अन्याय न हो, इसके आप सब गवाह हो।

(1) बड़ी बहू बेपरवाह है। उसमें अनुशासन नहीं है। उसने दाने बाहर फेंक दिये। इसलिये उसके जिम्मे झाड़ना, बुहारना, पौछा लगाना, साफ–सफाई करना, यह कनिष्ठ दर्जे का काम सौंपता हूँ।

(2) दूसरी बहू ने दाने खा लिये। खाने में इसकी रुचि है। अत: रसोई–पानी, चौका–बर्तन का काम इसके जिम्मे रहेगा।

(3) तीसरी बहू ने दिमाग तो लगाया नहीं। लेकिन दानों की सुरक्षा का ध्यान रखा। इसलिये घर की सारी चाबियाँ मैं इसे सौंपता हूँ। वह सम्पत्ति की रक्षा करेगी।

(4) छोटी बहू ने रहस्य का हार्द समझ लिया, बुद्धिमानी बताई। वृद्धि करने का पुरुषार्थ बताया। यह मेरी प्रतिष्ठा और सम्पत्ति में भी वृद्धि करेगी। इसलिये मैं इसको प्रमुख गृहिणी के रूप में नियुक्त करता हूँ। सभी इसकी आज्ञा का पालन करेंगे। सभी इसकी राय लेंगे और

इसकी आज्ञा के बिना कोई काम नहीं करेंगे। सभी उपस्थित जनों ने सेठ के निर्णय की सराहना की।

उपसंहार

(1) शाली के पाँच दाने यानी साधु के पाँच महाव्रत हैं।

(2) दाने फेंक देना यानी व्रतों को तोड़ देना है।

(3) दाने खा लेना यानी दीक्षित होने पर भी आहार पानी आदि पौद्गलिक सुखों में लुब्ध होना है।

(4) दाने सुरक्षित रखना यानी चारित्र धर्म का सम्यक् रीति से पालन करना।

(5) दानों से बड़ी फसल लेना यानी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संयम को उत्तरोत्तर बढ़ाते जाना है।

संयम की रक्षा करने वाले एवं वृद्धि करने वाले साधु वन्दनीय होते हैं। शिथिलता लाने वाले और विकारों में लुब्ध होने वाले भव-भ्रमण करते हैं।

◇◆◇

मल्लिनाथ

महाविदेह क्षेत्र में वीतशोका नाम की नगरी थी। बल नाम का राजा था, उनकी धारिणी रानी थी। महाबल नाम का राजकुमार था। एक दिन धर्मघोष मुनि का पधारना हुआ। स्थविर मुनि का उपदेश सुनकर बल राजा को वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने महाबल का राज्याभिषेक कर दीक्षा ले ली और जनपद में विचरने लगा। महाबल के छह मित्र थे। जिनके नाम थे 1. अचल 2. धरण 3. पूरण 4. वसु 5. वैश्रमण और 6. अभिचन्द्र। इन सातों का जन्मोत्सव साथ हुआ था। सातों एक साथ खेले, गुरुकुल गये और बड़े हुए। सातों में गहरी दोस्ती थी। इनकी मैत्री में कभी अन्तर नहीं आया। वे जहाँ जाते एक साथ जाते, जो भी कार्य करते एक राय से करते थे।

एक लम्बा समय बीता। धर्मघोष मुनि दुबारा उस नगरी में आये। महाबल ने अपने छहों मित्रों को बुलाकर कहा-''मित्रों, मैं अपने पुत्र बलभद्र को राजगद्दी पर बिठाकर धर्मघोष मुनि के पास दीक्षा लेना चाहता हूँ। अत: आप सभी मुझे आज्ञा दें।''

मित्रों ने कहा-''अपना यह तय हुआ है कि जो भी कार्य करना है सब मिलकर करना है। जब आप ही हमारे बीच नहीं रहेंगे तो हमारे जीवन में क्या बचेगा ? आप आत्म-कल्याणार्थ दीक्षा ले रहे हैं तो

अच्छे कार्य में हम क्यों पीछे रहें ? सातों मित्रों ने भागवती दीक्षा ग्रहण की और वे जनपद में विचरने लगे।

सातों सन्तों ने संकल्प लिया, कर्मक्षय के लिए हम तपस्या से अपने को भावित करेंगे। सब एक जैसा तप करने लगे। कालान्तर में महाबल के मन में कुछ विशेषता के भाव आये। सबका उपवास होता तो वह बेला करता। सबका बेला होता तो वह तेला करता। इस तरह सबसे एक उपवास ज्यादा ही करता। इस माया रूप कपट के कारण उसने स्त्री नाम कर्म का बन्ध किया। उसके पश्चात् उग्र तपश्चर्या और निम्न 20 बोल की आराधना करने के कारण उसने तीर्थङ्कर गोत्र नाम कर्म का भी उपार्जन किया। वे 20 बोल इस प्रकार हैं--

(1-7) 1. अरिहन्त 2. सिद्ध, 3. गुरु. 4. स्थविर 5. बहुश्रुत 6. तपस्वी 7. शास्त्र इनका गुणानुवाद करें।

(8) प्रवचन माता (5 समिति 3 गुप्ति) की आराधना करे।

(9) बड़ों का विनय करे।

(10) समकित निर्मल पालें।

(11) सीखे हुए ज्ञान का बारम्बार चिन्तन करे।

(12) समय-समय पर छह आवश्यक करें।

(13) प्रत्याख्यान का निर्मल पालन करे।

(14) धर्म-ध्यान, शुक्ल-ध्यान ध्यावें।

(15) छह बाह्य और छह आभ्यन्तर ऐसी बारह प्रकार की निर्जरा करे।

(16) सुपात्रदान तथा अभयदान देवे।

(17) दस प्रकार की सेवा करे। 1. आचार्य 2. उपाध्याय 3. तपस्वी 4. शैक्ष 5. ग्लान 6. गण 7. कुल 8. संघ 9. साधु 10. समनोज्ञ।

(18) चतुर्विध संघ को शान्ति-समाधि देवे।

(19) नया-नया अपूर्व तत्त्वज्ञान पढ़े।

(20) मिथ्यात्व का नाश एवं समकित उद्योत करे। इन 20 बोलों का महाबल ने पालन किया। इसके कारण तीर्थङ्कर गोत्र नामकर्म का उपार्जन किया। छहों मुनियों ने साधु की ग्यारह प्रतिमाएँ धारण कीं। महा सिंह निष्क्रीड़ित तप किया। अनेक उग्र तप किये। शरीर कृश हो गये थे। अन्त समय निकट आया जानकर सातों मित्र-साधु वक्षार पर्वत पर चढ़े। वहाँ एक मास के संथारे के साथ कालधर्म को प्राप्त हुए। उन्होंने जयंत नाम के अनुत्तर विमान में 32 सागर की आयु वाले देव रूप में जन्म लिया। वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर उन्होंने क्रमशः निम्नानुसार मनुष्यभव प्राप्त किया।

1. अचल इक्ष्वाकु देश का प्रतिबुद्धि नाम का राजा हुआ।

2. धरण अंगदेश का चन्द्रछाय नाम का राजा हुआ।

3. पूरण काशी देश का शंख नाम का राजा हुआ।

4. वसु कुणाल देश का रुक्मि नाम का राजा हुआ।

5. वैश्रमण कुरुदेश का अदीनशत्रु नाम का राजा हुआ।

6. अभिचन्द्र पंचाल देश का जितशत्रु नाम का राजा हुआ।

7. महाबल के जीव ने तीर्थङ्कर गोत्र और स्त्री नामकर्म का बन्ध किया था, उसका जीव मिथिला नगरी के राजा कुम्भ की महारानी प्रभावती की कोख में पुत्री के रूप में हुआ। तीर्थङ्कर की माता 14 स्वप्न देखती है। प्रभावती ने भी निम्न 14 स्वप्न देखे। 1. गज 2. वृषभ 3. सिंह 4. अभिषेक 5. पुष्पमाला 6. चन्द्रमा 7. सूर्य 8. ध्वजा 9. कुम्भ 10. पद्मसरोवर 11. सागर 12. विमान 13. रत्नराशि 14. निर्धूम अग्नि। रानी ने गर्भकाल पूर्ण होने पर एक सुन्दर पुत्री को जन्म दिया। फूलों की माला पहनने का दोहद हुआ था, इसलिए पुत्री का नाम मल्लिकुमारी रखा गया।

तीर्थङ्करों को जन्म से ही अवधिज्ञान होता है। मल्लिकुमारी बड़ी हुई तो उसने अपने पूर्वभव के अपने छहों मित्रों के हालात, उनके नाम, देश, उत्पत्ति स्थान आदि जान लिये। ये छहों मित्र भिन्न-भिन्न देश के राजा थे। इन छहों ने मल्लिकुमारी का रूप, विद्वत्ता और वैभव की प्रसिद्धि और चर्चा सुनी थी। छहों ने अपने राजदूत कुम्भ राजा के पास भेजे और मल्लिकुमारी का हाथ माँगा था। राजा कुम्भ क्रोधित हुआ और छहों राजदूतों को राज्य के बाहर निकल जाने की आज्ञा दे दी। इससे ये छहों राजा भी अपमानित हुए। उन्होंने आपस में सन्धि कर ली और वे मिथिला पर धावा बोलकर युद्ध करने का मौका ढूँढ रहे थे।

मल्लि ने अवधि ज्ञान से इन छहों की हालत जान ली और शिल्पकारों को बुलाया। एक भव्य मोहनमहल (मोह लेने वाला महल) बनाने का हुक्म दिया। इधर भवन के मध्य में एक बड़ा कमरा बनवाया। उस कमरे के मध्य में एक चबूतरा बनवाया । उस चबूतरे पर मल्लिकुमारी की आदमकद सुवर्ण की मूर्ति रखी जायेगी। इस मूर्ति के माथे पर एक ढक्कन रहेगा। मध्यवर्ती कमरे के परिवेष्टित 6 कमरे और बनेंगे और उनमें एक-एक खिड़की होगी, जिसमें से सिर्फ चबूतरे पर रखी हुई सुवर्ण-मूर्ति दिखाई देगी।

आज्ञा और सभी सूचनाओं के मुताबिक भवन तैयार हो गया। मल्लिकुमारी प्रतिदिन भोजन करते वक्त एक ग्रास उस सुवर्ण मूर्ति का ढक्कन खोल उसमें डाल देती।

इधर छहों राजाओं ने एक साथ मिथिला पर चढ़ाई कर दी। छहों राजाओं की संयुक्त सेना के सामने अकेले कुम्भ राजा की सेना का टिका रहना मुश्किल था। राजा कुम्भ चिन्ताग्रस्त अवस्था में बैठा ही था कि मल्लिकुमारी ने कहा-''पिताजी! आप व्यर्थ की चिन्ता क्यों कर रहे हैं ? आप उन छहों को अलग-अलग बुलाइये और कहिये कि वे उसके साथ मल्लिकुमारी का परिणय करा देंगे और उन्हें एक-एक कमरे में ठहरा दीजिये। हाँ, इसकी भनक एक-दूसरे को न लगे, इसका ध्यान रहे।''

राजा कुम्भ ने वैसा ही किया और उन्हें मोहनमहल के छह कमरों में निवास स्थान दे दिया। कोठी की खिड़की से मल्लिकुमारी की वह

सुन्दर सुवर्ण प्रतिमा दिखाई देती थी। अपने को पत्नी के रूप में मल्लिकुमारी की प्राप्ति होगी इस कल्पना से छहों खुश थे।

एक गुप्तद्वार से मल्लिकुमारी आई। उसने जैसे ही प्रतिमा के माथे का ढक्कन खोला, उसमें रहे हुए अनाज की दुर्गंध चारों तरफ फैल गयी। दुर्गन्ध असह्य थी। छहों राजाओं ने अपने नाक पर वस्त्र रखे, दुर्गंध से बचने की कोशिश की।

मल्लिकुमारी सामने आई उन्हें सम्बोधित करते हुए बोली–''हे आर्यपुत्रों! इतनी–सी अनाज की दुर्गन्ध से तुम घबरा गये हो। यह तो सुवर्ण की प्रतिमा है। लेकिन यह मानव शरीर तो रुधिर, हड्डी, मांस, चर्बी, मल, मूत्र, पसीना आदि अनेक गंदगियों से भरा है। चमड़ी का गिलाफ इसके ऊपर ओढ़ रखा है। अत: वह गन्दगी दिखाई नहीं देती।

याद करो आज से दूसरे पूर्व भव को। हम महाबल, अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रमण, अभिचन्द्र नाम के सात मित्र थे। परन्तु माया (कपट) के वश होकर मैंने आप छहों से एक–एक उपवास हर समय ज्यादा किया था। इस कारण मैंने स्त्री नाम कर्म का बन्ध किया। वहाँ से हम जयन्त नाम के अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ हमने संकल्प किया था कि मर्त्यलोक में जाने के पश्चात् जिसे भी प्रथम ज्ञान होगा, उसे अन्यों को प्रतिबोध देना है और बाद में सभी को दीक्षा लेकर अपना आत्मकल्याण करना है।

''मित्रों! आज वह प्रसङ्ग आया है। मुझे जन्म से अवधिज्ञान प्राप्त है। उसी के कारण आप कहाँ–कहाँ पैदा हुए, यह मैंने जान लिया था।

आपको प्रतिबोध देना मेरा कर्त्तव्य था। मैं स्वयं दीक्षा लेना चाहती हूँ। तुम्हें क्या करना है ? इसका निर्णय तुम स्वयं करो।''

मल्लिकुमारी ने तीर्थङ्कर देते हैं वैसा वर्षीदान किया। सहस्राम्रवन उद्यान में आई। समस्त आभरणों का त्याग किया। प्रभावती देवी ने आभरण ग्रहण किये। मल्लिकुमारी ने स्वयं पंचमुष्टि लोच किया। शक्रेन्द्र देवराज ने मल्लि के केशों को ग्रहण कर क्षीरोदक समुद्र में प्रक्षेप किया। छहों मित्रों ने भी उनके पास दीक्षा ली।

मल्लि भगवती 100 वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे। दीक्षा ली। दीक्षा लेकर उसी दिन उन्हें मन:पर्यव और केवलज्ञान हुआ। सौ वर्ष कम पचपन हजार वर्ष की केवली पर्याय पालकर वे सिद्धगति को प्राप्त हुए।

मल्लि भगवती जी के 28 गणधर, 40,000 साधु, 55,000 साध्वियाँ, 1,84,000 श्रावक, 3,65,000 श्राविकाएँ, 600 चौदह पूर्वी साधु, 2,000 अवधिज्ञानी, 3,200 केवलज्ञानी, 3,500 वैक्रिय लब्धिधारी, 800 मन:पर्यवज्ञानी इतनी सम्पदा थी।

उपसंहार

नित्य तपश्चर्या करने वाले, संयम की आराधना करने वाले जीवों को माया (कपट) के कारण भावी तीर्थङ्कर होते हुए भी स्त्री-भव करना पड़ा। माया (कपट) का हम त्याग करेंगे तो अव्याबाध सुख की प्राप्ति होगी।

◇◆◇

जिनरक्ष-जिनपाल

चम्पानगरी में माकंदीय नाम का एक बड़ा व्यापारी रहता था। विदेशों में उसका व्यापार चलता था। उसके दो पुत्र थे। जिनरक्ष और जिनपाल। वे भी व्यापार में कुशल थे। दोनों पुत्रों ने लवणसमुद्र में ग्यारह बार व्यापारार्थ यात्रा की थी। अपना माल परदेश में बेचना और परदेश का माल लाकर चम्पानगरी में बेचना, यह उनका व्यापार था। व्यापार में खूब आय होती थी।

दोनों भाइयों की फिर से इच्छा हुई कि लवण समुद्र की ओर एक यात्रा करें। पिता से आज्ञा माँगी। पिता ने मना किया-रोका। लेकिन पुत्र नहीं माने और जहाजों पर माल लाद कर निकल पड़े। कुछ दिनों बाद जब जहाज मध्य समुद्र में आये तो अचानक आँधी चली, तूफान आया, लहरें उछलने लगीं और देखते ही देखते लहरों ने जहाजों को दबाकर समुद्र के पेट में छिपा दिया। जहाज से टूटी हुई एक लकड़ी की पटरी तकदीर से दोनों भाइयों के हाथ लगी, उसके सहारे वे डूबने से बचे। पिता के वचन याद आये। पिता का कहना नहीं माना, इसका पश्चात्ताप हुआ।

रात्रि समाप्त हुई, पौ फटी। उन्होंने अपने को किसी द्वीप-किनारे के सन्निकट पाया। मृत्यु के ताण्डव में जीवन की एक किरण चमकी,

दोनों भाई किनारे पर गये। इधर-उधर से कुछ खाने लायक फल इकट्ठे किये और क्षुधा शान्त की।

थोड़ी ही देर में वहाँ रत्ना नाम की एक देवी (व्यंतरी) आई। उसके हाथों में तलवार थी। उसने दो नये मेहमानों को देखा और सोचा आज अच्छा शिकार मिल गया है। उसने दोनों को तलवार दिखाकर डराया, धमकाया और कहा-''मेरे साथ चलो। यदि जीना चाहते हो तो मेरे साथ कामभोगों से मुझे तृप्त करो। वरना इसी तलवार से मैं आपको जीवन-रहित कर देती हूँ।''

मरता क्या न करता ? मृत्यु का भय था। दोनों ने कहा- ''हम आपको प्रसन्न रखेंगे। हमारी जान बख्श दो।'' वे देवी के पीछे चले और एक विशाल महल में आये। वहाँ सुख से रहने लगे। समय बीतता रहा। एक दिन इन्द्रदेव ने रत्नादेवी को आदेश दिया कि वह लवण समुद्र के किनारे जितना कचरा है वह साफ कर दे। काम बड़ा था। समय लगने वाला था। रत्नादेवी जाने की तैयारी करने लगी। उसने दोनों भाइयों को आगाह किया- ''देखो, मैं जा रही हूँ। शायद मुझे लौटने में देर भी हो। आप लोग ऊब जाओ तो घूमने निकल जाना। पूर्व दिशा में एक उद्यान है। उससे बढ़िया पश्चिम में है, उत्तर में भी है। लेकिन ध्यान रहे, दक्षिण दिशा में भूलकर भी मत जाना। वहाँ पर बड़े-बड़े सर्प हैं और अनेक प्रकार के खतरे हैं।'' सूचना देकर देवी चली गयी।

दोनों भाई घूमने निकले। पूर्व, पश्चिम, उत्तर तीनों दिशाओं में

घूमे। दक्षिण की तरफ जाने से देवी ने रोका था। दोनों को ऐसा लगा जैसे इस रोक लगाने में अवश्य कोई रहस्य है। जिज्ञासा जागृत हुई। वे अपने को रोक न सके। जैसे ही दक्षिण उद्यान की तरफ आये, उन्होंने अत्यन्त दुर्गन्ध महसूस की। थोड़ा आगे बढ़े। वहाँ शूली पर लटकाया हुआ एक व्यक्ति दिखाई दिया। वह भयंकर आक्रोश और विलाप कर रहा था।

दोनों भाई पहले तो डर गये। बाद में हिम्मत करके उन्होंने उस व्यक्ति से पूछा-''भाई तुम कौन हो ? यहाँ कैसे आये हो ? किस कारण तुम्हारी ऐसी हालत हुई है ?'' उसने जवाब दिया-''मैं काकन्दी का निवासी और घोड़े का व्यापारी हूँ। मेरा जहाज डूब गया। पटरी के सहारे मैं किनारे लगा। रत्नादेवी ने मुझसे कहा कि मेरे साथ काम-भोगों को भोगो, वरना तुम्हें मार डालूँगी। मृत्यु के भय से बात माननी पड़ी। इसके बाद रत्ना के जीवन में तुम दोनों आये। इसलिये उसने मुझे शूली पर लटका दिया और 1-2 दिन में प्राणरहित कर देगी। सम्भव है तुम्हारा भी यही हश्र हो।''

दोनों भाई चौंके। उन्होंने पूछा-''इससे छुटकारा पाने का कोई इलाज है ?''

व्यक्ति-''हाँ है। पूर्व दिशा के उद्यान में एक यक्ष रहता है, वह अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या को प्रकट होता है और पुकारता है-''किसको तारूँ ? किसको पार उतारूँ ?'' तब तुम

बोलना हमें तारो हमें पार उतारो।'' लेकिन ध्यान रहे, उसकी सूचनाओं का कड़ाई से पालन होना चाहिये।

जिनपाल-''भाई! यदि यह उपाय तुम्हें मालूम था तो तुमने देवी से छुटकारा क्यों नहीं पाया ?''

व्यक्ति-''मैं तो रत्ना देवी के सौन्दर्य से, हावभावों में मुग्ध बना रहा। अशुभ की आशंका मुझे कभी हुई नहीं। अब पछता रहा हूँ।''

दोनों भाई वहाँ से निकले। पूर्व दिशा के उद्यान में आये। यक्ष तिथि का दिवस था। यक्ष की प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी देर बाद यक्ष प्रकट हुआ। उसने पुकार लगाई ''किसको तारूँ ? किसको पार उतारूँ ?''

दोनों ने कहा-''हमें तारो, हमें पार उतारो।''

यक्ष ने कहा-''मैं तुम्हें पार उतारूँगा। लेकिन तुम्हें पीछे मुड़कर नहीं देखना है। रत्नादेवी पुकारे तो जवाब नहीं देना है। वरना जीवन से हाथ धोना पड़ेगा।''

यक्ष ने दोनों भाईयों को अपनी पीठ पर बैठाया और लवण समुद्र पर उड़ान भरी। रत्नादेवी ने उपयोग लगाकर देखा कि दोनों भाई हाथ से निकले जा रहे हैं तो उसने मायाजाल फैलाया। उसने दोनों को डराया, धमकाया, ललचाया, हावभाव भी दिखाये, रोयी, चिल्लाई, झूठी कसमें खायी। प्रेम की दुहाई दी। उसकी विरह-वेदना देखकर जिनरक्ष कुछ पसीजा, उसको दया आ गयी। उसका विलाप उसे सत्य

प्रतिभासित हुआ। यक्ष ने उसके मनोगत भावों को जाना और पीठ पर से नीचे समुद्र में गिरा दिया। रत्ना ने उसे ऊपर उठाया, आकाश में उछाला, तलवार की नोंक पर झेला और उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर जिनपाल को रिझाने लगी। जिनपाल ने पीछे मुड़कर भी नहीं देखा और यक्ष की सूचना पर दृढ़ रहा। यक्ष ने उसे चम्पानगरी पहुँचाया। जिनपाल ने रत्नद्वीप की सारी बातें कथन की। जिनरक्ष की मृत्यु से सबको दु:ख हुआ।

एक बार भगवान महावीर चम्पानगरी के पूर्णभद्र उद्यान में पधारे। जिनपाल ने दीक्षा ग्रहण की। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। एक मास के अनशन से काल कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ दो सागर की आयु पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और सिद्धि प्राप्त करेगा।

उपसंहार

रत्नादेवी यानी अविरति। माकन्दीय पुत्र यानी संसारी जीव। शूली पर चढ़ा व्यक्ति यानी मार्गदर्शक गुरु। यक्ष यानी संयम। जिनरक्ष संयम से भ्रष्ट हुआ। जिनपाल अपने स्थान (मोक्ष) पर पहुँच गया। जो इन्द्रियों को अपने वश में रखते हैं, वे भवसागर से तिर जाते हैं। जो इन्द्रियों के वशीभूत होते हैं, वे संयम से गिरकर, भवसागर में जन्म-मरण के गोते लगाते हैं।

◇◆◇

चन्द्रमा

भगवान महावीर राजगृही नगरी में विराजमान थे। गौतम गणधर को जिज्ञासा हुई। भगवान के पास आये, वन्दन किया और प्रश्न पूछा- भगवान ने जवाब दिया-''गौतम! जीव शाश्वत है, अनादि है, अनन्त हैं। अतएव जीव की संख्या में हानि-वृद्धि नहीं होती। वह संख्या शाश्वत है। एक-एक जीव असंख्यात प्रदेश वाला है। उसके प्रदेशों में कभी वृद्धि-हानि नहीं होती। इसलिये तुम्हारे प्रश्न का आशय जीव के गुणों की वृद्धि-हानि से है, ऐसा मैं मानता हूँ।

गौतम! जैसे कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्र, पूर्णिमा चन्द्र की अपेक्षा, शुक्लता में, सौम्यता में, स्निग्धता में, कान्ति में, ओज में गोलाई में हीन होता है और यह हीनता अमावस्या तक बढ़ती ही जाती है। यही जीव के गुणों की हानि है। हीनता की तरफ जाने वाला जीव दस यति-धर्म में निरन्तर हानि करता है। राहु नक्षत्र भी चन्द्रमा को ग्रस लेता है तो चन्द्रमा की कांति कम हो जाती है''

गौतम-''भगवन्! जीव गुणों में वृद्धि किस तरह करता है?''

भगवान-''गौतम! जैसे शुक्ल पक्ष की द्वितीया के चन्द्रमा से आगे तृतीया, चतुर्थी, पंचमी यावत् पूर्णिमा का चन्द्रमा हर दृष्टि से वृद्धि प्राप्त करता है, वैसे ही जो जीव क्षमा, आर्जव, मार्दव, लाघव,

सत्य, संयम, तप, त्याग, अकिंचन और ब्रह्मचर्य में वृद्धि करता है, वही सही अर्थ में जीव की वृद्धि है।

जैसे शुक्ल और कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का आकार, तेज, कान्ति, वर्ण, रूप में फर्क दिखाई देता है। इसी तरह जीव के आचरण के अनुसार जीव के गुणों में हीनाधिकता होती है।

उपसंहार

चन्द्रमा के स्थान पर साधु समझिए। चन्द्रमा को ग्रसने वाले राहु के स्थान पर 'प्रमाद' समझिए। गुणों से परिपूर्ण साधु प्रमाद में पड़कर हीनता को प्राप्त होता है। जो गुणहीन साधु है, वह सुशील साधु के सम्पर्क से वृद्धि को प्राप्त होता है।

◇◆◇

दावद्रव वृक्ष

एक बार गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से जिज्ञासा-वश प्रश्न किया-''भगवन्! जीव किस प्रकार आराधक या विराधक होते हैं?''

तब भगवान ने जवाब दिया-''गौतम! समुद्र के किनारे दावद्रव वृक्ष होते हैं। वे वर्ण से काले, परन्तु पत्र, पुष्प और फलों से बहुत ही सुशोभित एवं मनोहारी लगते हैं।

जब द्वीप सम्बन्धी पुरवाई (हवा) चलती है तो कोई-कोई वृक्ष पूर्ववत् मनोहारी बने रहते हैं और कोई-कोई वृक्ष जीर्ण-शीर्ण पत्र, पुष्प, फल रहित बनकर सूख जाते हैं।

जब समुद्री हवा बहती है तब कुछ वृक्ष पल्लवित बने रहते हैं और कुछ सूख जाते हैं। हमारे जो दीक्षित परन्तु शिथिलाचारी साधु हैं, उनमें से कोई तो स्वमत के साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं के दुर्वचन सहन कर लेते हैं। अन्य तीर्थियों के दुर्वचन सहन नहीं करते, वे देश विराधक हैं।

जो साधु-साध्वी अन्य मत के गृहस्थों के दुर्वचन भी सहन कर लेते हैं, वे देश आराधक हैं।

जब द्वीप सम्बन्धी पुरवाई, समुद्री मंद हवा या तूफानी हवा कोई भी हवा नहीं चलती तब दावद्रव वृक्ष सूखकर ठूँठ बन जाते हैं।

इसी तरह जो हमारे साधु दीक्षित होकर स्वमत या अन्यमत लोगों के दुर्वचन सहन नहीं कर पाते, वे सर्व विराधक हैं। जब पुरवाई भी बह रही हो, समुद्री हवा भी बह रही हो, मन्द वायु या प्रचण्ड वात हो, कैसी भी हवा हो, दावद्रव वृक्ष मनोहर और पल्लवित ही खड़े रहते हैं।

हमारे साधु स्वपक्ष के या अन्य पक्ष के दुर्वचन समभाव से सहन कर लेते हैं। उन्हें मैंने सर्व आराधक की संज्ञा दी है।''

उपसंहार

दावद्रव वृक्ष यानी साधु। द्वीप सम्बन्धी वायु या पुरवाई यानी स्वमत के वचन। समुद्री वायु यानी अन्य तीर्थियों के वचन। पत्र, पुष्प, फूल यानी मोक्ष मार्ग की आराधना। पत्र, पुष्प, फल का नाश* यानी मोक्षमार्ग की विराधना। साधर्मी के दुर्वचन सहना आराधना, दुर्वचन न सहना विराधना है। अन्य मत के दुर्वचन सहना अल्प आराधना और न सहना विराधना है।

भगवान की आज्ञा के अनुसार चले, वह आराधक है। जो आज्ञा के विरुद्ध काम करता है, वह विराधक कहलाता है।

---

* वृक्ष जीर्ण होना, सड़-जाना, मुरझाना।

अंशत: आज्ञा पालने वाला देश आराधक है। अंशत: आज्ञा की विराधना करने वाला देश विराधक है।

साधक को चाहिये कि वह समभाव में रहे। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कैसा भी हो, कोई भी परिस्थिति हो, जो समभाव में स्थित रहता है, वही श्रेष्ठ साधु है।

अत: साधकों को किसी के भी दुर्वचन हों, समभाव से सहन करने चाहिये।

◇◆◇

खाई का पानी (सुबुद्धि प्रधान)

चम्पानगरी का राजा जितशत्रु था और सुबुद्धि नामक उसका प्रधान था। सुबुद्धि यथानाम बुद्धिमान था। जीव, अजीव आदि नव तत्त्वों को जानने वाला था। भेदविज्ञान में विश्वास करने वाला था।

उस चम्पानगरी के ईशानकोण में एक बड़ी खाई थी, जिसमें चम्पानगरी की सारी गटरें, नालियाँ और अशुचिभरा पानी आकर इकट्ठा होता था। उसमें मल, मूत्र, कीड़े, मकोड़े, चर्बी, माँस, रुधिर आदि दुनियाँ भर की अशुचि की चीजें थीं। इस कारण उस विभाग में असह्य दुर्गन्ध फैली थी।

एक दिन जितशत्रु राजा ने बढ़िया स्वादिष्ट भोजन बनाने की आज्ञा दी। सुबुद्धि प्रधान के साथ कुछ दरबारियों को भी भोज पर आमन्त्रित किया। भोजन हुआ। एक कक्ष में वार्तालाप करते हुए बैठे थे।

राजा ने पूछा-''कहो, आज के भोजन में कौनसी चीजें अधिक स्वादिष्ट थीं ?''

सभी दरबारियों ने हरेक पदार्थ का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया। वह वर्ण से कैसा सुन्दर था, स्वाद से कैसा मधुर था, गन्ध से कैसा

खुशबूदार था और स्पर्श से कितना मुलायम था, यह बताने की मानो दरबारियों में होड़-सी लगी थी। वे चापलूस जो थे।

सुबुद्धि मौन था। वह कुछ बोला नहीं। सुबुद्धि बोल नहीं रहा था, अत: जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि से पूछा। फिर भी सुबुद्धि मौन रहा। दूसरी और तीसरी बार पूछा।

तब सुबुद्धि बोला-''राजन् इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं है। यह पुद्गल का धर्म है। हर पुद्गल में वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होते हैं। पुद्गल के ये गुण भी कालान्तर में परिवर्तित हो सकते हैं। आज जो सुन्दर रूप है, मनोज्ञ गंध है, मधुर रस है, कोमल स्पर्श है, वे कभी अमनोज्ञ हो जाते हैं। शुभ-अशुभ में परिणत होता है। वैसे ही आज के अमनोज्ञ या अशुभ पुद्गल कल शुभ और मनोज्ञ में बदल जाते हैं। यह पुद्गल का स्वभाव है, धर्म है। पर्यायें सर्वदा बदलती रहती हैं।

सुबुद्धि प्रधान का यह जवाब राजा जितशत्रु को रुचा नहीं। उसके चेहरे से नाराजगी टपक रही थी।

एक दिन की बात है कि राजा जितशत्रु और सुबुद्धि प्रधान घुड़सवारी के लिए निकले जिस तरफ वह खाई थी, उधर से गुजर रहे थे कि खाई की दुर्गन्ध से राजा ने अपने नाक पर वस्त्र ढँक लिया। उसका जी मिचलाने लगा। राजा ने सुबुद्धि से कहा कितना बदबूदार एवं गंदा पानी है। सुबुद्धि ने कहा-''राजन्! यह तो पुद्गल का स्वभाव है।'' राजा को बुरा लगा व अविश्वास की दृष्टि से मंत्री को देखा।

सुबुद्धि को राजा को प्रतिबोध देने का एक विषय मिल गया। उसने नौकरों से अनेक कोरे मटके मँगवाये तथा उन मटकों को उसी गंदी खाई के पानी से भरवाया और कुछ घड़ों में राख, कुछ घड़ों में रेत, कुछ घड़ों में ईटों के टुकड़े, कुछ घड़ों में फिटकरी और कुछ घड़ों में खस की खुशबूदार जड़ें डाल दीं। फिर वे इस प्रकार रखे कि सबसे ऊपर के घड़े का पानी चू कर दूसरे घड़े में, दूसरे का तीसरे में इस तरह गिरता रहे। इस तरह जलशुद्धिकरण (फिल्टर) की प्रक्रिया लगातार सात सप्ताह चलती रही।

एक दिन सुबुद्धि ने अपने नौकरों के द्वारा शीतल, सुगन्धित और अमृततुल्य जल भोजन कक्ष में भिजवाया और राजा भोजन करे तब उसे देने को कहा।

वह जल पीकर राजा अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ और उसने पूछा– ''यह जल कहाँ से लाये ?'' सुबुद्धि ने जवाब दिया–''राजन्! यह उसी गन्दी खाई का जल है।''

राजा को विश्वास नहीं हुआ। उसने सारी प्रक्रिया अपने सामने करवाई तथा देखी। अनुभव किया तब उसे विश्वास हुआ।

जितशत्रु ने सुबुद्धि प्रधान से श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये। कालान्तर से उसने सुबुद्धि प्रधान को साथ लेकर दीक्षा धारण की। अनेक वर्ष साधु पर्याय पाली। एक मास का संथारा लिया और निर्वाणपद प्राप्त किया।

उपसंहार

पापी और मिथ्यादृष्टि भी सत्संग से बदल जाते हैं, शुद्ध होते हैं, अपना जीवन कल्याण करते हैं। अच्छे पुण्यात्मा कुसंगति में पड़कर अपना नाश कर लेते हैं। अच्छा या बुरा, ये दोनों संगति के ही फल हैं।

खाई का पानी गन्दा था। कारण पुद्गल के अन्दर कम से कम एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श रहते हैं। पर्यायें बदलती भी रहती हैं।

द्रव्य गुणों का आश्रय है। गुण केवल द्रव्य में ही रहते हैं। पर्यायें गुणों में भी रहती है और द्रव्य में भी रहती हैं।

गन्दा पानी या स्वच्छ पानी ये पर्याय के ही प्रकार हैं। क्योंकि पर्यायें बदलती रहती हैं। यही कारण है कि सदाचारी लोग कुसंगति से बिगड़ जाते हैं और पापी लोग सत्संग से सुधर जाते हैं। गन्दे पानी को सत्संग मिला तो वह शुद्ध हो गया।

◇◆◇

नंद मणिकार

एक समय भगवान महावीर राजगृही नगरी के गुणशील उद्यान में पधारे। अवधिज्ञान के द्वारा सौधर्म देवलोक के दर्दुर नामक देव ने यह बात जान ली। वह भगवान को वन्दन करने उपस्थित हुआ। उसने भगवान को वन्दन किया और परिषद का नाट्यकला आदि से मनोरञ्जन कर वह अपने स्थान लौट गया।

गौतम स्वामी ने यह देखा तो उन्हें जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि यह कौन है? इसने ऐसा कौन-सा कार्य किया है कि जिससे इसे इतनी लब्धि प्राप्त हुई है ?

गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से पूछा-''भगवन्! आपकी इस सभा में हर्षावेश में प्रवेश कर इस देव ने नाट्यकला द्वारा अपनी लब्धि का प्रदर्शन किया। इस देव को यह लब्धि किस कारण प्राप्त हुई। कृपया मेरी जानकारी के लिए मुझे समझाइये।''

प्रभु ने कहा-''गौतम! इसी राजगृह नगर में नन्द नाम का एक मणिकार रहता था। वह धनसम्पन्न, यशसम्पन्न और कीर्तिसम्पन्न था। ग्रामानुग्राम विचरते हुए एक बार मेरा इस राजगृही में आगमन हुआ। तब राजा श्रेणिक के साथ अनेक नागरिक भी दर्शनार्थ आये। उनमें नन्द मणिकार भी था।

मेरा प्रवचन सुनकर नन्द मणिकार को कुछ प्रतिबोध हुआ और उसने मुझसे श्रावक के बारह व्रत धारण किये। मैं विहार कर अन्यत्र चला गया। लम्बे समय तक नन्द मणिकार को सन्त-मुनियों का सत्संग प्राप्त न हो सका। इस कारण धीरे-धीरे मिथ्यात्वी बनता चला गया।

एक समय की बात है। ग्रीष्म ऋतु थी। जेठ का महीना था। नन्द मणिकार तेले का पच्चक्खाण लेकर पौषध व्रत से पौषधशाला में बैठा था। गर्मी की वजह से उसे अत्यन्त प्यास लगी। उसका सारा ध्यान तृषा से सम्बन्धित रहा। पूरे पौषध व्रत में उसका चिन्तन पानी के विषय में ही हुआ।

इस राजगृही के बाहर कई लोगों ने बाग-बगीचे लगवाये हैं, बावड़ियाँ खुदवायी हैं। थके-माँदे लोग वहाँ आते हैं। छाया में विश्राम लेते हैं, स्वच्छ और शीतल जल पीते हैं और बावड़ी बनाने वाले को धन्यवाद देकर आगे बढ़ते हैं। तृषा का अनुभव तो मैं ले ही रहा हूँ। आज मेरे पास विपुल धन सम्पति है। क्यों न मैं स्वयं एक सुन्दर-सी बावड़ी बनवाऊँ और इसके इर्द-गिर्द सभी सुविधाएँ उपलब्ध करा दूँ। इसके लिए सबसे पहले राजा श्रेणिक से जमीन और आज्ञा लेनी चाहिये।

बावड़ी बनवाने का संकल्प दृढ़ हो गया और पौषध पूर्ण हुआ। नंद मणिकार घर आया और पारणा किया। स्नान किया। नये वस्त्र पहने। राजा को भेंट देने की बढ़िया और मूल्यवान वस्तु साथ ली और राजदरबार में जाने के लिए उसने प्रस्थान किया। दरबार में आते ही राजा को भेंट वस्तु पेश की और अपने स्थान पर बैठा। कुशल क्षेम की

पूछताछ होने पर राजा ने कहा–''नंद! आज किसी विशेष प्रयोजन से आये हुए दिखाई देते हो।''

नंद मणिकार–''हाँ अन्नदाता! मेरी भावना हुई है कि राजगृही के बाहर आप जहाँ भी जमीन और आज्ञा दें, उस स्थान पर एक सुन्दर बावड़ी बनवाऊँ और मुसाफिरों के लिए विश्रामगृह, भोजनालय, स्नानगृह आदि का प्रबन्ध करूँ। आप आज्ञा फरमाने की कृपा करें।''

श्रेणिक–''नंद! यह तुम्हारा बहुत ही अच्छा विचार है। इसकी आवश्यकता भी है। लोकसेवा का यह सुन्दर तरीका है। मैं जमीन पर बावड़ी बनवाने की आज्ञा देता हूँ। तुम्हें भी ध्यान में रखना है। वह परिसर ऐसा सुहावना और लुभावना हो कि वहाँ आने वाले यात्री प्रसन्न और कृतकृत्य होकर वहाँ से लौटें।'' राजाज्ञा मिली। बड़ी बावड़ी खुदवाने का काम शुरू हुआ। अनेक शिल्पी और कारीगर काम पर लगाये गये। बावड़ी भी नयनाभिराम विशाल और अनोखी बनी। छाया के लिए भाँति-भाँति के वृक्ष लगाये गये। इर्द-गिर्द भोजनगृह, विश्रामगृह, चित्रशाला, स्नानगृह आदि बने। जिसने देखा उसने सराहा। जिसने वहाँ विश्राम किया, धन्यवाद देते हुए लौटा। नंद मणियार के गुणगान गाये।

समय बीतता रहा। नंद मणिकार को असंख्य रोगों ने घेरा। उसकी सम्पत्ति और सारे इलाज काम नहीं आये। वह कालधर्म को प्राप्त हुआ। अन्तिम समय में उस बावड़ी में मूर्च्छाभाव, ममत्व, आसक्ति रही। इसलिये मरकर उस बावड़ी में मेंढ़क के रूप में उसने जन्म लिया।

कई लोग प्रतिदिन आते, छाया में विश्राम लेते, जल पीते, थकान मिटाते। लौटते समय नंद मणिकार के गुण गाते। धन्यवाद देते हुए कहते-''धन्यवाद है उस नंद मणिकार को, जिसने जनसेवा का ऐसा महान कार्य किया।''

बार-बार यही शब्द मेंढ़क सुनता रहा। उसे एक दिन विचार आया कि ऐसे शब्द तो मैंने पहले भी कई बार सुने हैं। ऐसा चिन्तन करते ही शुभ भावों के परिणामों से उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। उसने उपयोग लगाकर अपना पूर्व भव देखा और जाना। मैं ही वह नंद मणिकार हूँ। मैंने भगवान महावीर से बारह व्रत ग्रहण किये थे। मैं बाद में मिथ्यात्वी बना। असह्य बीमारी से मेरी मृत्यु हुई। मूर्च्छाभाव के कारण मैंने इसी बावड़ी में मेंढ़क के रूप में जन्म पाया। खैर जो बीत गया वह बीत गया। आगे के हालात सुधारने चाहिये। मुझे आत्मकल्याण करना चाहिये।

मेंढ़क के मन में शुभ भाव उत्पन्न हुए। उसने अभिग्रह किया, तप किया, कुछ नियम चितारे।

एक दिन उसने यात्रियों के मुख से सुना कि जन-जन को पावन करने वाले परम करुणासागर भगवान महावीर राजगृही में पधारे हैं। मेंढ़क को हर्ष का पारावार न रहा। उसने सोचा-मैं भी भगवान के दर्शन करूँ, देशना सुनूँ, गलतियों का प्रायश्चित्त लूँ। ऐसी भावना भाते हुए मेंढ़क ने भगवान महावीर के दर्शनार्थ प्रस्थान किया।

इधर राजा श्रेणिक भी दर्शनार्थ निकला। रास्ता पार करने की जल्दी में वह मेंढ़क राजा श्रेणिक के घोड़े के पैर के नीचे आ गया। बहुत ही घायल हुआ। चलना असम्भव था। किसी तरह रास्ते के किनारे पड़ा रहा। समता भाव में लीन हुआ और विचारने लगा–''प्रभो! मैं आपके दर्शन करना चाहता था। मैं अभागा आपके दर्शन भी कर न सका। भगवन्! यहीं से मैं आपको भाव वंदन करता हूँ। मेरी वंदना स्वीकारो। मेरे अपराध क्षमा करो।''

एगो वि नमुक्कारो, जिणवरवसहस्सवद्धमाणस्स।
संसारसागराओ तारेइ, नरं वा नारिं वा।।

भ. ऋषभदेव से लगाकर भ. महावीर तक किसी भी तीर्थङ्कर को किया हुआ एक नमस्कार भी जीव को संसार समुद्र से तार देता है।

मेंढ़क ने संथारा–व्रत धारण किया। अन्तिम समय शुभ एवं शुद्ध परिणामों के कारण प्रथम सौधर्म देवलोक में दर्दुर देव रूप में उत्पन्न हुआ। गौतम! यह वही दर्दुर देव था।

उपसंहार

गुणवान पुरुष भी सत्संग के अभाव में मिथ्यात्वी बन जाता है। अत: हमेशा सत्संग में रहें। सत्संग न मिले तो स्वाध्याय करें, धर्मग्रन्थ पढ़े। भावपूर्वक तीर्थङ्करों को नमस्कार करने से आत्मा विशुद्ध बनती है और सद्गति प्राप्त करती है।

◇◆◇

तेतलीपुत्र

एक तेतलीपुर नाम का नगर था। वहाँ के राजा का नाम कनकरथ था। वह राजा बहुत ही ऐयाश और विषयलंपट था। उसके अंत:पुर में अनेक रानियाँ थीं। राजा हमेशा अंत:पुर में ही पड़ा रहता। राज्य के कामकाज में उसका ध्यान नहीं था। वह दरबार में भी शायद ही कभी-कभी जाता था।

इस राजा का एक प्रधान था 'तेतलीपुत्र'। तेतलीपुत्र बहुत ही चतुर, बुद्धिमान एवं सुन्दर था। एक बार शहर में घूमते हुए उसकी नजर एक ऊँची हवेली की अटारी में बैठी हुई एक युवती पर पड़ी। यह युवती साक्षात् रति की प्रतिमूर्ति थी। वह प्रमाणबद्ध शरीर, अप्रतिम लावण्य, हिरनी सी आँखें, सीधी नाक, मोती जैसे शुभ्र दाँत प्रधान इस युवती को देखता ही रहा। उसके रूप लावण्य से प्रभावित हुआ। उससे विवाह करने की अभिलाषा उसके मन में जाग्रत हुई।

वह अपने महल में लौटा, सेवकों को बुलाया और ठीक से पता बताकर वह ऊँची हवेली किसकी है और उसमें रहने वाली वह युवती कौन है ? इसकी जाँच करने के आदेश दिये। दोपहर में अनुचरों ने प्रधान को आकर बताया कि वह हवेली एक सुनार की है एवं वह युवती उसकी अविवाहिता कन्या है। तेतलीपुत्र को कुछ आशा बँधी।

प्रधान ने सेवकों से कहा–''उस सुनार के पास जाओ। उससे कहो कि प्रधान उसकी पुत्री के साथ विवाह करना चाहता है।''

अन्धा क्या चाहता ? दो आँखें। सुनार को खुशी हुई कि उसकी पुत्री प्रधान के साथ ब्याही जा रही है। उस विवाह के कारण सुनार का भी राज्य में ओहदा, सम्मान बढ़ेगा, प्रतिष्ठा बढ़ेगी, लाभ होगा।

यथासमय प्रधान तेतलीपुत्र और सुनार की पुत्री पोट्टिला विवाहबद्ध हो गये। इधर कनकरथ राजा चाहता था कि उसकी किसी भी रानी को सन्तान न हो। यदि पुत्र हुआ तो उसकी राजगद्दी छीन लेगा और स्वयं राजा बन बैठेगा। इस डर और आशंका के कारण वह किसी रानी के पुत्र होते ही, उस नवजात बालक की अंगुली, हाथ, पाँव, नाक या कान कटवा देता था ताकि वह बालक 32 लक्षणों से युक्त होकर राजगद्दी का पात्र न बने। यह क्रम लम्बे समय तक चलता रहा।

कनकरथ राजा की पटरानी पद्मावती थी । एक बार वह सगर्भा रही। राजा के स्वभाव, आदत एवं डर से वह परिचित थी। उसके पुत्र के साथ भी राजा यही बर्ताव करेगा, यह निश्चित था। इसका कुछ इलाज ढूँढ़ना चाहिये। उसने प्रधान तेतलीपुत्र को बुलाया। अपनी कथा और व्यथा उसके सामने रखी। रानी ने कहा–''जो पाका सो खरेगा, जो जन्मा सो मरेगा। वृक्ष की सूखी पत्ती तो खिरेगी ही। जिसने जन्म लिया है, उसे कभी न कभी मृत्यु को प्राप्त होना है। यह संसार का नियम है। आखिर राजगद्दी को भी तो वारिस चाहिए।''

तेतलीपुत्र ने महारानी को आश्वस्त किया और सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। महारानी पद्मावती के साथ इधर पोट्टिला भी गर्भवती रही। दोनों एक-साथ प्रसूत हुई। पद्मावती ने एक सुन्दर राजपुत्र को और पोटिला ने एक मृत कन्या को जन्म दिया। अपने वचन के अनुसार तेतलीपुत्र ने अपनी दासियों के द्वारा गुप्त रूप से अपनी मृत पुत्री को पद्मावती के पास भिजवा दिया और उसका पुत्र अपने पास मँगवा लिया। पुत्र का नाम रखा कनकध्वज।

समय के साथ तेतलीपुत्र के विचारों में भी परिवर्तन आया। जो स्नेह पोट्टिला पर था, वह न रहा। पोट्टिला के प्रति उसके मन में तीव्र नाराजी उत्पन्न हुई। वह न उससे बोलता, न उसका आदर सम्मान करता। मौका मिलने पर चार लोगों के सामने उसे अपमानित करने का प्रयत्न करता। पोट्टिला अपने ही पूर्वकृत कर्मों को कोसती और मन मसोसकर रह जाती।

एक दिन सुव्रता नाम की एक साध्वी पोट्टिला के यहाँ गोचरी के प्रयोजन से आई। पोट्टिला ने भक्तिभाव पूर्वक वन्दना की, आहार-पानी बहराया। वर्षों से अपने पति के व्यवहार से उसे अन्दर ही अन्दर घुटन महसूस हो रही थी। आज साध्वीजी से कहा-''मैं बहुत सुखी थी। बाद में पति की मुझ पर अकारण नाराजगी हुई। अब वे न मुझसे बोलते हैं न आव-आदर करते हैं। आप संत-सतियों के पास अनेक प्रकार की विद्या, मन्त्र, तंत्र, यंत्र और लब्धियाँ रहती हैं, ऐसा मैंने सुना है। मुझ पर भी आप अनुग्रह कीजिये। कोई वशीकरण मंत्र मुझे देने की कृपा करें, ताकि मैं पूर्ववत् सम्मान पा सकूँ।''

साध्वीजी ने बड़ी गंभीरता से कहा-''हे देवानुप्रिये! हम जैन साध्वियाँ हैं। किसी भी काली विद्या की आराधना करने से हमारा व्रत भंग होता है। किसी को मंत्र, तंत्र देना, किसी का भविष्य कथन करना, कंडा-डोरा करना, तावीज देना, ये बातें हमारे शास्त्रों में और सामाचारी में निषिद्ध हैं। इससे हमारे पंच महाव्रतों का भंग भी होता है और ऐसा करना भी गलत है। सुख और दु:ख तो अपने कर्माधीन हैं। अत: अशुभ कर्मों का क्षय कर शुभ प्रवृत्तियों के विकास के लिए धर्म की आराधना करना यही श्रेष्ठ कार्य है। हाँ, आप कहें तो मैं धर्म की आराधना का स्वरूप समझा सकती हूँ।''

पोट्टिला ने कहा-''हाँ, मुझे वही समझा दीजिए। मैं यथाशक्ति पालन और आराधना करूँगी। मुझे तो आत्मशान्ति से मतलब है।''

महासती ने उपदेश दिया-''देवानुप्रिये! भगवन्त ने धर्म दो प्रकार के कहे हैं-1) आगार धर्म और 2) अणगार धर्म। संसार में रहते हुए जीवन-निर्वाह के लिए श्रावक को अनेक प्रकार के आरम्भ-समारम्भ करने पड़ते हैं। इसलिए अपनी-अपनी आत्मशक्ति के अनुसार ही श्रावक, व्रत और नियम ग्रहण करता है। श्रावक के बारह व्रत हैं।

लेकिन जिन्हें संसार से कोई मोह नहीं रहा, जिन्होंने घर-गृहस्थी त्याग दी, विरक्त हो गये हैं, दीक्षा ले ली है, ऐसे सन्त-सतियों के लिए 5 महाव्रत, 5 समिति, 3 गुप्ति पालन करने का विधान है। इसके सम्यक् पालन से ही आत्मकल्याण होता है, शान्ति मिलती है।''

पोट्टिला ने अणगार धर्म का स्वरूप विस्तारपूर्वक सुना, मनन

किया। शुरू में महासतीजी से बारह व्रत ग्रहण किये और धर्म-ध्यान में वह अपना समय बिताने लगी।

कनकरथ राजा कालधर्म को प्राप्त हो गया। राजगद्दी किसे दी जाए ? सारी जनता दुविधा में पड़ गई। सारे नागरिक प्रधान तेतलीपुत्र के पास आये। तेतलीपुत्र ने कहा-''गद्दी का अधिकारी मेरा मानद पुत्र कनकध्वज है। वह कनकरथ राजा का ही पुत्र है। राजा के क्रूर स्वभाव के कारण गुप्त रीति से मैंने उसे पाला, पोषा, सिखाया और बड़ा किया।''

सुनकर लोगों को खुशी हुई और कनकध्वज का राज्याभिषेक भी सम्पन्न हो गया। अब तेतलीपुत्र का सम्मान और भी बढ़ गया। राजा का तो वह माना हुआ पिता ही था। तेतलीपुत्र मौज, शौक, आराम के साथ रहने लगा। उसने अपनी पत्नी पोट्टिला की हमेशा उपेक्षा ही की।

पोट्टिला जीवन से निराश हो गई। उसके मन में वैराग्य के भाव जागे। ऐसी बदतर और उपेक्षित जिन्दगी से तो दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करना यही श्रेयस्कर है, ऐसा उसने सोचा।

दीक्षा के लिए पति की आज्ञा आवश्यक थी। पति से आज्ञा माँगी। पति के इन्कार करने का कोई कारण ही नहीं था। उसने एक शर्त पर आज्ञा दी। वह शर्त थी कि 'यदि पोट्टिला देवलोक में उत्पन्न हो तो वह आकर तेतलीपुत्र को प्रतिबोध दें।' पोट्टिला ने शर्त स्वीकार की। दीक्षा हुई। संयम-यात्रा ज्ञान-ध्यान, तप के साथ व्यतीत करते हुए

पोट्टिला ने अन्त समय में संथारा व्रत लिया और काल कर वह देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुई।

एक दिन पोट्टिला ने उपयोग लगाकर अवधिज्ञान से तेतलीपुत्र की गिरी हुई अवस्था देखी। अपना वचन याद आया। उसे प्रतिबोध देने की ठानी। उसने माया जाल से एवं अपनी दैवी शक्ति से राजा कनकध्वज के मन में तेतलीपुत्र के बारे में घृणा भर दी। तिरस्कार उत्पन्न कर दिया। राजा के साथ-साथ प्रजा भी तेतलीपुत्र का अनादर करने लगी।

जिसने जीवनभर मान, सम्मान, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य और अधिकार का उपभोग किया, उसे जीवन के उत्तरार्द्ध में यह तिरस्कृत जिन्दगी सह पाना मुश्किल था। उसने आत्महत्या करने की अनेक कोशिशें की, लेकिन पोट्टिलदेव के कारण वह कामयाब न हो सका। तब पोट्टिलदेव ने स्वयं को उसके सामने उपस्थित कर और उससे पूछा-''हे तेतलीपुत्र, सामने बहुत बड़ी और गहरी खाई है, पीछे उन्मत्त हाथियों का झुण्ड है, अगल-बगल दोनों तरफ गहरा अन्धकार है, ऊपर से बाणों की मूसलाधार वर्षा हो रही है, ग्राम में अग्नि का प्रकोप है और जंगल में दावानल फैला है, ऐसी हालत में क्या करना चाहिये ?''

तेतली पुत्र ने जवाब दिया-''ऐसी हालत में चारित्र की ही शरण लेनी चाहिए। जैसे भूखे को अन्न, प्यासे को पानी, बीमार को औषध, थके-माँदे को वाहन, डूबते को नाव शरणभूत है, उसी तरह भयग्रस्त पुरुष के लिए दीक्षा शरणभूत है।''

पोट्टिल देव ने कहा-''हे तेतलीपुत्र ! तुम्हारे लिये भी अब चारित्र

ग्रहण करना, दीक्षा लेना श्रेयस्कर है।'' पोट्टिलदेव चला गया। तेतलीपुत्र का चिन्तन शुरू हुआ। शुभ परिणामों के कारण उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। उसने अपने पूर्व भव देखे। पूर्व भव में भी एक बार उसने दीक्षा ली थी। चौदह पूर्वों का अध्ययन किया था। वह साधना अधूरी रह गयी थी। उसे पूरी करना था।

उसने स्वयं पंचमुष्टि लोच किया, पाँच महाव्रत धारण किये। पूर्व भव में अध्ययन किया हुआ चौदह पूर्वों का ज्ञान उसे अपने आप स्मरण में आ गया। अनेक वर्ष संयम-पर्याय का पालन कर तेतलीपुत्र ने सिद्ध गति प्राप्त की।

उपसंहार

सुख में झूलते हुए न हमें भगवान याद आता है, न धर्म याद आता है। दु:ख में झुलसते हुए ही हमें भगवान, धर्म, वैराग्य आदि बातें याद आती हैं।

दु:ख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
यदि सुख में सुमिरन करे, तो दु:ख काहे को होय।।

किसी को तंत्र, मंत्र, कंडा, धागा, डोरा, तावीज देना, भविष्य कथन करना, हस्तरेखा का फल बताना संत-सतियों के लिए निषेध है, जिनाज्ञा की विराधना है।

◇◆◇

नंदीफल

चम्पानगरी का जितशत्रु नाम का का राजा था। उसी नगरी में धन्ना सार्थवाह नाम का नगरसेठ था। चम्पा के ईशान कोण में (दिशा में) बहुत दूर एक अहिछत्रा नाम की नगरी थी। चम्पा और अहिछत्रा इन दोनों नगरियों के बीच पहले अंगदेश पड़ता था। अंगदेश के पास एक विस्तीर्ण और दुर्गम जंगल था। इस जंगल में बगैर किसी आपत्ति के निकल पाना बड़ा मुश्किल था। इस रास्ते में चोर, डकैतों का डर था एवं हिंसक श्वापदों का भी डर था, साथ ही जहरीले जानवरों का डर था।

धन्ना सार्थवाह का मन हुआ कि चम्पानगरी से बहुत सारा किराणा, अनाज, वस्त्र आदि माल लेकर अहिछत्रा नगरी जाये। वहाँ माल बेचे और वहाँ पर बनने वाली चीजें लेकर चम्पानगरी में वितरित करें। इस तरह दोहरा लाभ उठाये। अल्प संख्या में जाना असुरक्षित और खतरे का काम था।

उसने चम्पानगरी में घोषणा करवा दी, जो भी व्यक्ति व्यापार के लिए या यात्रा के लिए अहिछत्रा जाना चाहते हों, वे धन्ना सार्थवाह के साथ जा सकते हैं। धन्ना सेठ उन्हें हर तरह से मदद करेगा। जिसे पूँजी के लिए पैसा चाहिये उसे पैसा मिलेगा, माल मिलेगा, सुरक्षा मिलेगी। जिस किसी साधु, संत, वैरागी, संन्यासी या परिव्राजक को जाना हो

उनके भी खाने-पीने, भोजन, निवास और सुरक्षा का जिम्मा धन्ना सेठ का रहेगा।

नियत मुहूर्त पर प्रस्थान हुआ। काफी संख्या में लोग जाने के लिए निकले। अंग देश पार किया। बाद में वह विस्तीर्ण वनखण्ड जैसे ही शुरू हुआ, उस सीमा पर धन्नासेठ ने पड़ाव डाला। सबको एकत्रित किया। जंगल से पार होते समय जो-जो सावधानियाँ बरतने की बातें थी, उनकी जानकारी दी।

नंदीफल वृक्ष को पहचानने के लक्षण बताते हुए उसने कहा-''ये वृक्ष श्याम वर्ण के हैं। लेकिन उनके पत्ते, फूल, फल और छाया इतनी मनोहारी है कि किसी का भी मन ललचाये कि उसके पत्ते तोड़ें, फूल सूँघे, फल चखें या छाया में बैठें। परन्तु मैं सबको आगाह करता हूँ कि इन वृक्षों के आकर्षण से परे रहना। जो भी उसके फूल सूँघेगा, फल खायेगा या छाया में बैठेगा, उसे अपने जीवन से हाथ धोना पड़ेगा। इसलिये सब लोग इस वृक्ष से दूर रहकर ही चलें।''

काफिला पुन: गतिमान हुआ। नंदीफल वृक्ष दिखाई देने लगे। जो समझदार और विवेकी थे, उन्होंने वृक्षों से अपनी नजरें भी हटा लीं। सामने पगदंडी पर दृष्टि जमाये वे चलते रहे। लेकिन कुछ ऐसे भी उद्दंड, बेदरकार, घमण्डी और मन पर काबू न पाने वाले थे, वे उन वृक्षों की छाया में बैठे, फूल सूँघे, फल खाये और थोड़ी ही देर में इस संसार से चल बसे।

धन्ना का कारवाँ अहिछत्रा नगरी पहुँचा। वहाँ के राजा को बहुमूल्य उपहार दिये, उस राज्य का कर माफ करवा लिया। खूब व्यापार किया। पैसा कमाया। वहाँ पर बनने वाला माल लेकर चम्पानगरी लौट आया। एक बार एक स्थविर मुनि का पधारना चम्पानगरी में हुआ। धन्ना ने उनका प्रवचन सुना। व्यापार में पुरुषार्थ किया था। संयम में भी पुरुषार्थ करने की भावना जागी। दीक्षा ली। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना की। अन्त समय अनशन कर समाधिमरण प्राप्त किया और धन्ना का जीव देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्यवकर वह महाविदेह क्षेत्र में पैदा होगा और उसी भव से मोक्ष प्राप्त करेगा।

उपसंहार

चम्पानगरी यानी मनुष्य गति है। धन्ना सार्थवाह यानी जिन प्ररूपित धर्म है। अहिछत्रा नगरी यानी मोक्ष है।

जो लोग नंदीफल में लुब्ध हुए, वे प्राणरहित हो गये। जो पाँचों इन्द्रियों में लुब्ध होते हैं, वे संसार में ही भ्रमण करते रहते हैं। जो लुब्ध नहीं हुए वे गन्तव्य स्थान, अहिछत्रा नगरी में सुखपूर्वक पहुँचे। ऐसे ही जो लोग विषय-विकारों में लुब्ध नहीं होते, वे गन्तव्य स्थान मोक्ष में पहुँच जाते हैं।

नन्दीफल खाने में स्वादिष्ट, सूँघने में सुगन्धित, देखने में अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता है, किन्तु उसका भक्षण हलाहल विष का काम करता है। बाह्य सौन्दर्य से मुग्ध होकर जो उसका भोग करता है वह

प्राणों से हाथ धो बैठता है। इसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी अतीव अनिष्ट-जनक है। भोग भी ऊपर से बड़े लुभावने, आनन्ददायी, तृप्तिकारक और मधुर प्रतीत होते हैं। लेकिन उनका नतीजा बहुत बुरा होता है।

भोग तो क्षणिक सुख देने वाले और दीर्घकाल दु:ख देने वाले तथा चौरासी लाख जीव योनि में भ्रमण कराने वाले होते हैं।

◇◆◇

द्रौपदी

चम्पानगरी में तीन ब्राह्मण बन्धु निवास करते थे। उनके नाम सोम, सोमदत्त और सोमभूति थे। वे आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न थे। विद्वत्ता की दृष्टि से चारों वेदों के ज्ञाता थे। उनकी पत्नियों के नाम क्रमश: नागश्री, भूतश्री और यक्षश्री थे।

किसी प्रयोजन विशेष से तीनों भाई एकत्र हुए, वार्तालाप चला तो उन्होंने सोचा-''हमारे पास पर्याप्त सम्पत्ति है। कितना भी खर्च करें या दान करें तो भी सात पीढ़ियों तक चल सकती है, तो क्यों न हम प्रतिदिन बारी-बारी से बढ़िया भोजन बनायें और हम भाइयों के परिवार एकत्र होकर खाना खायें।'' सबने स्वीकृति दी। वे प्रतिदिन एक दूसरों के घरों में प्रचुर मात्रा में स्वादिष्ट भोजन बनवाने लगे और बनवाकर साथ-साथ भोजन करने लगे।

एक दिन नागश्री के यहाँ भोजन की बारी आई। उसने बढ़िया से बढ़िया मसाले, घी, तेल, सब्जियाँ आदि मँगवायी। परिवार में सबसे बड़ी बहू होने के नाते रसोई बढ़िया और स्वादिष्ट बने ताकि सभी खुश हों, यह उसकी अभिलाषा थी। एक शाक तुम्बे का भी बना था। सोचा जरा शाक चख के तो देख लूँ। उसने शाक की एक बूँद हथेली पर ली और चखी। शाक अत्यन्त ही कड़वा लगा।

यह क्या हो गया ? वह घबरायी। सब लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे। भोजन का समय भी हो रहा है। उसने वह कड़वा शाक रसोई घर के एक कोने में छिपा दिया। जल्दी में नया शाक बना लिया। सभी परिवार का भोजन भी हो गया। नागश्री की सराहना करते हुए सभी भाई एवं नागश्री की देवरानियाँ और बच्चे अपने-अपने घरों को लौट गये।

उन दिनों चम्पानगरी में आचार्य धर्मघोष अपने बहुत बड़े शिष्य परिवार के साथ पधारे थे। उनमें एक शिष्य थे धर्मरुचि अणगार, जो मासखमण तप करते रहते थे। उनका मासखमण तप पूर्ण हुआ। आज पारणे का दिन था। गुरु की आज्ञा लेकर तीसरे प्रहर में धर्मरुचि अणगार गोचरी के लिए निकले और नागश्री के घर में प्रविष्ट हुए। नागश्री को खुशी हुई कि सन्तों को आहार-दान का पुण्य भी मिलेगा और कड़वे तुम्बे की बात किसी को पता भी नहीं चलेगी। उसने सारा शाक मुनिराज के पात्र में उंडेलकर राहत की साँस ली।

गोचरी लेकर धर्मरुचि अणगार अपने स्थान आये। मार्गदोष निवृत्ति का पाठ पढ़ा। प्रतिलेखन किया और लाई हुयी गोचरी आचार्य को बताई। आचार्य ने शाक में से एक विशिष्ट गंध आती देख एक बूँद अपने हाथ पर ली, चखी और आदेश दिया-''यह शाक कड़वा और जहरीला है। इसका कोई उपयोग न करे, इसे एकान्त और निर्जीव स्थान में परठ दें।''

धर्मरुचि अणगार ने वह पात्र लिया। शहर से बाहर एकान्त और निर्जीव स्थान की गवेषणा में आये। स्थण्डिल भूमि की प्रतिलेखना की

और उस शाक की एक बूँद उस भूभाग पर डाली। कुछ ही क्षण पहले जो निर्जीव भूभाग था, वहाँ क्षणार्द्ध में अनेक चीटियाँ आईं, उस शाक की बूँद पर टूट पड़ी और थोड़ी ही देर में प्राण रहित हो गईं।

धर्मरुचि अणगार ने सोचा एक बूँद से इतनी चीटियाँ मर गयीं, तो पूरा शाक-पात्र उँडेलने से तो हजारों जीवों की हत्या होगी। इस हत्या से बचने का एक उपाय है। क्यों न इस शाक को अपने पेट में परठ दूँ। सम्भव है एक जीव की ही हत्या होगी। परन्तु अनन्त जीवों के प्राण तो बच जायेंगे। उन्होंने वह सारा शाक अपने पेट के कोठे में उतार लिया।

थोड़ी ही देर में उन्हें असह्य वेदनाएँ होना शुरू हुईं। उन्होंने भूमि का प्रतिलेखन किया, दर्भ का बिछौना बिछाया, उस पर आरूढ़ हुए। अपने भण्डोपकरण एक जगह इकट्ठे करके रखे, संथाराव्रत के प्रत्याख्यान ले लिये और थोड़ी ही देर में कालधर्म को प्राप्त हो गये।

बहुत देर तक धर्मरुचि के न लौटने पर आचार्य धर्मघोष ने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि वे धर्मरुचि अणगार की तलाश कर अपने साथ ले आयें। सभी शिष्य ढूँढने निकले। आखिर स्थण्डिल भूमि में धर्मरुचि अणगार का निष्प्राण शरीर देखा, दर्भ का संस्तारक देखा। सभी भंडोपकरण रजोहरण आदि करीने से रखे हुए देखे और शाक की बूँद से अनेक चींटियाँ मरी हुई देखीं। सन्तों ने निर्णय किया कि कीड़ियों की करुणा से धर्मरुचि अणगार ने स्वयं शाक खा लिया है और

संलेखना से समाधिमरण प्राप्त किया है। उन्होंने धर्मरुचि अणगार के सभी भंडोपकरण लिये, आचार्यश्री के सामने रखे और जो देखा था, उस हालात का कथन किया।

आचार्य धर्मघोष ने उपयोग लगाकर देखा और सारी बातें जान लीं। उन्होंने अपने शिष्यों को बुलाकर कहा–''यह शाक नागश्री ब्राह्मणी ने बनाया था। जीवदया, करुणा और अनुकम्पा के भाव से धर्मरुचि ने स्वयं वह शाक खा लिया और समाधिमरण कर उनका जीव सर्वार्थसिद्ध विमान में 33 सागर वाले आयु के देवरूप में उत्पन्न हुआ है। वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धि प्राप्त करेगा।

आचार्य ने नागश्री का नाम लिया तब एक श्रावक के कानों पर भी ये वाक्य पड़े। थोड़ी ही देर में सारी चम्पानगरी जान गयी कि यह घटिया काम नागश्री ब्राह्मणी का है। सब उसे धिक्कारते, लताड़ते, मारते, पीटते, निन्दा करते दिखाई दिये। आखिरकार तीनों ब्राह्मण भाईयों ने उसे घर से निकाल दिया। वह मारे-मारे घूमती रही। लोग उस पर थूँकते, डण्डों से पीटते, उसकी निन्दा-भर्त्सना करते। मासखमण तपस्वी की यह हत्यारी है, यह बात सारी चम्पानगरी जान गयी।

नागश्री अनेक रोगों से व्याधिग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त हुई और छठी नरक में उत्पन्न हुई। वहाँ से मत्स्य हुई। फिर सातवीं नरक में गई वहाँ से फिर मत्स्य और सातवीं नरक। इस तरह नारकी और तिर्यञ्च के अनेक भव करने के पश्चात् वह चम्पानगरी में ही सागरदत्त

सार्थवाह के घर पुत्री रूप में उत्पन्न हुई। उसका नाम सुकुमालिका रखा गया। सुकुमालिका बहुत ही सुन्दर थी। समय के साथ सुकुमालिका यौवनावस्था को प्राप्त हुई।

एक दिन चम्पानगरी में ही रहने वाले धनाढ्य सार्थवाह जिनदत्त सागरदत्त सार्थवाह के मकान की तरफ से कहीं जा रहे थे तो उनकी नजर सागरदत्त की पुत्री सुकुमालिका पर पड़ी। सुकुमालिका अपनी सहेलियों के साथ चाँदनी पर खेल रही थी। उसका रूप, यौवन और लावण्य तथा प्रमाणबद्ध शरीर देखकर जिनदत्त सेठ के मन में विचार आया कि यह लड़की अपने पुत्र सागर की पत्नी बनने योग्य है। जिनदत्त घर आया। अपने अनुचरों को बुलवाया और वह लड़की कौन है उसकी तलाश करने का आदेश दिया। नौकरों ने आकर कहा कि वह सागरदत्त नामक सार्थवाह की लड़की सुकुमालिका है और अविवाहिता है।

जिनदत्त नहा-धोकर सागरदत्त के घर गया। अपना परिचय दिया और कहा कि मैं अपने पुत्र सागर के लिए आपकी बेटी सुकुमालिका को पत्नीरूप में माँग करने आया हूँ। आप को यह प्रस्ताव ठीक लगे तो आप कृपया स्वीकृति दीजिए।

सागरदत्त ने कहा-''सेठजी, वैसे आपका प्रस्ताव उचित ही है। लेकिन मेरी लड़की सुकुमालिका मुझे इतनी प्रिय है कि उसका वियोग मैं सह न सकूँगा। अत: मैंने यह निश्चय किया है कि जो लड़का मेरे यहाँ घर जमाई के रूप में रहेगा उसी के साथ मैं सुकुमालिका का विवाह रचाऊँगा।''

जिनदत्त घर आया। अपने पुत्र सागर से सलाह मशविरा किया। सागर की स्वीकृति समझ उसका सम्बन्ध सुकुमालिका के साथ तय कर दिया। शुभ मुहूर्त पर विवाह भी सम्पन्न हो गया। सुहागरात आई। दोनों शयनागार में आये। जैसे ही सागर ने सुकुमालिका का स्पर्श किया, वह स्पर्श उसे तलवार की धार जैसा तीक्ष्ण और अग्नि जैसा जलाने वाला मालूम हुआ। दो-तीन बार यही अनुभव होने से सागर घबरा गया, डर गया और उसी रात वह भागकर अपने घर आ गया। पूर्व कर्मोदय के कारण सुकुमालिका को अग्निज्वर नामक रोग हो गया था। उसका यह परिणाम था।

सुबह यह बात सागरदत्त को मालूम हुई। वह जिनदत्त के यहाँ आकर लड़ने लगा और कहा-''सेठ! आपने सागर को घर-जमाई के रूप में रखने का वचन दिया था, लेकिन वह भाग आया।'' जिनदत्त को भी बुरा लगा। वे अन्दर के कमरे में गये। अपने लड़के को डाँटा, फटकारा, बुरा-भला कहा। आज लड़के के कारण जिनदत्त के वचन मिथ्या हुए हैं। जिनदत्त के पुत्र ने जो सफाई दी, जो कारण बताये, वे सब बाहर के कमरे में बैठा हुआ सागरदत्त सुन रहा था।

सागर ने अपने पिता जिनदत्त से कहा-''हे तात! मुझे ऊँचे वृक्ष से या पर्वत से गिरना स्वीकार है, आग में जल जाना, पानी में डूब जाना आदि सभी बातें स्वीकार हैं लेकिन मैं सागरदत्त के घर जाकर सुकुमालिका के पति के रूप में नहीं रह सकता।'' उसने सब कारण भी बता दिये। सागरदत्त ने जैसे ही ये दलीलें सुनी, वह अत्यन्त

लज्जित हुआ। बाहर के कमरे से खिसक कर घर आ गया। उसने सुकुमालिका का दूसरा विवाह करने का संकल्प किया।

दूसरे दिन एक दीन-हीन भिखारी उसके द्वार पर आया। उसे मान सम्मान देकर, नहलाकर, नये कपड़े, आभूषण आदि पहनाकर उसके साथ सुकुमालिका का विवाह करवा दिया। रात को भिखारी को भी वही अनुभव हुआ जो सागर को हुआ था। भिखारी ने भी रात में वहाँ से पलायन कर दिया। सुकुमालिका के पास अपने कर्मों को कोसने के अलावा कोई चारा ही न रहा। पूर्व अशुभ कर्म उदय में जो आये थे।

एक बार गोवालिका नाम की साध्वीजी सुकुमालिका के घर गोचरी निमित्त से पधारीं। सुकुमालिका ने भावपूर्वक वन्दन किया, आहार बहराया और अपना दु:खड़ा कथन किया। साध्वी के सम्पर्क में और लगातार धर्म-श्रवण से उसने साध्वीजी के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। एक बार सुकुमालिका साध्वी को विचार आया कि वह बेले-बेले पारणा का तप करे, तप के काल में शहर के बाहर उद्यान के पास रहकर दिन को सूर्य की आतापना और रात्रि को शीत की आतापना ले। उसने गुरुणीजी से आज्ञा माँगी।

गुरुणीजी ने कहा-''बेले-बेले तप करना यह तो अच्छा विचार है। परन्तु साध्वियों के लिए अकेले विचरने की भगवान की आज्ञा नहीं है। तुम्हारे लिये यही श्रेयस्कर है कि साध्वी-समुदाय में रहकर ही तुम तप करो। गुरुणी का यह उपदेश सुकुमालिका को रुचा नहीं। वह

अकेली उद्यान में चली गयी और तप करने लगी। निर्वस्त्र होकर आतापना भी लेती रही।

उद्यान तो सार्वजनिक था। छुट्टी के दिन शहर के अनेक लोग आते। आज अवकाश का दिन था। शहर के पाँच धन-सम्पन्न मित्रों ने शहर की देवदत्ता वेश्या के साथ उस उद्यान में प्रवेश किया। ये छहों वहाँ पर आनन्द मनाने आये थे। इन छहों की परस्पर प्रेम, विनोद, हँसी, मजाक, छेड़खानी की बातें चल रही थी। एकान्त में रही सुकुमालिका साध्वी को यह सारा दृश्य दिखाई दे रहा था। छहों में विकारों का पोषण हो रहा है, देवदत्ता अपने हाव-भाव, संगीत-नृत्य और अभिनय से उन पाँचों को रिझाने का प्रयत्न कर रही है। साध्वी ने देखा कि देवदत्ता ने इन पाँचों पुरुषों के साथ मानुषिक कामभोगों का सेवन किया है और वे पाँच ही पुरुष उस देवदत्ता को प्रसन्न रखने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं।

साध्वी सुकुमालिका का भी चित्त चलायमान हुआ। उसके तप का भंग हुआ। उसके चारित्र का विनाश हुआ। भावना की ऊँची श्रेणि से उसका पतन हुआ। उसके मन में विचार आया-''यह देवदत्ता कितनी भाग्यवान है ? पाँच-पाँच पुरुष उसकी सेवा कर रहे हैं। वह पाँचों की प्रेमपात्र बनी है और इधर मैं पुण्यहीना अभागिनी हूँ कि एक भी पुरुष मेरी छाया में खड़ा नहीं रहता। कोई भी मुझे स्वीकार नहीं करता। यदि मेरे तप, संयम और ब्रह्मचर्य का कोई प्रभाव हो तो अगले भव में मैं भी पाँच पुरुषों के साथ विवाहबद्ध होऊँ।''

साध्वी ने निदान किया। निदान करना आगमों में निषिद्ध माना गया है। साध्वी ने संयम, तप और चारित्र की कीमत चुकाकर बदले में क्षणिक शारीरिक स्पर्श की कामना की।

साध्वी उद्यान से पुन: स्थानक में आई, लेकिन शिथिलाचारिणी बन गयी। शरीर का शृङ्गार करना, पानी का अत्यधिक उपयोग करना, अनर्थदण्ड का सेवन करना शुरू हुआ। गुरुणीजी ने उसे बार-बार समझाया, संयम में स्थिर करने की चेष्टा की, पर सब विफल रही। अन्त में सुकुमालिका साध्वी, काल कर दूसरे देवलोक में उत्पन्न हुई। वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर वह इसी भरत क्षेत्र में पांचाल देश में कंपिलपुर नगर में द्रुपद राजा के घर पुत्री रूप में उत्पन्न हुई। उसका नाम द्रौपदी रखा गया।

द्रौपदी का अनेक दास-दासियों द्वारा सुख-समृद्धि में लालन-पालन हुआ। बाल्यावस्था बिताकर उसने यौवनावस्था में पदार्पण किया। उसका सौन्दर्य और यौवन देख उसका विवाह स्वयंवर द्वारा ही होना श्रेयस्कर है, ऐसा पिता द्रुपद राजा ने सोचा।

स्वयंवर की रचना हुई। स्वयंवर की आमन्त्रण पत्रिकाएँ भेजी गईं। आमन्त्रण के अनुसार, श्रीकृष्ण वासुदेव, समुद्रविजय, बलदेव, उग्रसेन, पाण्डव आदि अनेक राजा महाराजा स्वयंवर मण्डप में पधारे और यथोचित स्थान पर बैठे।

द्रौपदी अपनी सखियों के साथ मण्डप में आई। उसने अपने पिता

द्रुपद राजा एवं श्रीकृष्ण वासुदेव को प्रणाम किया। हाथ में वरमाला ली। एक राज कर्मचारी आगे चल रहा था। हरेक राजपुत्र का संक्षेप में वर्णन और परिचय करा रहा था। जहाँ पाँच पाण्डव बैठे थे, वहाँ द्रौपदी आई। निदान के प्रभाव से पाँचों पाण्डवों के गले में उसने वरमाला पहना दी। द्रुपद राजा ने पाण्डवों का सत्कार किया, अपने राजमहल ले गया। वहाँ पर पाँचों पाण्डवों के साथ विवाह-विधि पूर्ण करवाई। पाण्डव द्रौपदी को लेकर हस्तिनापुर पधारे।

एक बार पाँचों पाण्डव और द्रौपदी अतिथि भवन में बैठे थे कि अचानक वहाँ नारदजी का पधारना हुआ। नारदजी को आते देख पाँचों पाण्डव खड़े हो गये। उन्होंने नारदजी का अभिवादन किया, आदर किया, सत्कार किया, उन्हें उचित स्थान पर स्थानापन्न किया। लेकिन द्रौपदी न तो अपनी जगह से उठी, न उसने अभिवादन किया, न कोई संवाद किया। यह बात नारदजी को अखरी। उन्होंने अपने आपको द्रौपदी द्वारा अपमानित महसूस किया। उन्हें ऐसा लगा कि द्रौपदी पाँच पाण्डवों की पत्नी हो गयी इसलिये उसे गर्व हो गया है। इसका गर्वहरण करना चाहिए। बदला लेने के विचार से नारद वहाँ से रवाना हो गये।

नारदजी अमरकंका राजधानी में आये। वहाँ के राजा पद्मनाभ ने उनका स्वागत किया, कुशलक्षेम पूछा एवं कहा-''देव! आप तो छह खण्ड में भ्रमण करते हैं। आप मुझे बताइये कि आपने अन्यत्र कौनसी ऐसी चीज देखी है जो मेरे राज्य में नहीं है।''

नारदजी ने जवाब दिया–''राजन्! पांडवों के अन्त:पुर की तुलना में आपका अन्त:पुर तुच्छ है। मैं छह खण्ड पृथ्वी में भ्रमण करता हूँ। भरतखण्ड के हस्तिनापुर में पांडवों की पत्नी द्रौपदी को मैंने देखा है। वैसी सुन्दर, रूपवती स्त्री मैंने अभी तक पृथ्वीतल पर नहीं देखी है।''

ऐसा कहकर नारदजी ने पद्मनाभ के मन में द्रौपदी को प्राप्त करने की लालसा पैदा कर दी। पद्मनाभ ने कहा–''देव! क्या आप मेरी कुछ भी सहायता नहीं करेंगे ?''

इस पर नारदजी बोले–''महाराज! दैवी शक्ति से ही यह संभव हो सकता है, अन्यथा नहीं।'' नारदजी चले गये।

पद्मनाभ ने इष्ट देव का चिन्तन किया, देव आया। राजा ने उसे आज्ञा दी कि द्रौपदी का हरण कर उसे यहाँ ले आओ।

देव ने कहा–''राजन्! मैं ला तो दूँगा। लेकिन वह महासती और पतिव्रता स्त्री है। उसे मैं आपके स्नेह में बँधने के लिए विवश नहीं कर सकूँगा।''

देव हस्तिनापुर गया और पलंग पर निद्रावस्था में सोयी हुई द्रौपदी को उठाकर पद्मनाभ के महल में छोड़ गया। द्रौपदी जगी। सामने पद्मनाभ खड़ा था। उसने कामेच्छा पूर्ति की बात की। परन्तु सती के तेज और प्रभाव के आगे उसकी एक न चली।

इधर द्रौपदी कहीं दिखाई नहीं दी। पांडव चिन्ताग्रस्त थे। चारों तरफ तलाश की। उसका अपहरण हुआ है, ऐसी आंशका हुई।

नारदजी हस्तिनापुर आये। श्रीकृष्ण वासुदेव और पाण्डवों ने उनसे पूछा–''क्या आपने द्रौपदी को देखा है ?''

नारदजी ने जवाब दिया–''हाँ, मैंने उसको अमरकंका नगरी में पद्मनाभ राजा के यहाँ देखा है।''

श्रीकृष्ण और पाण्डवों ने प्रस्थान किया। अमरकंका आये। वहाँ युद्ध हुआ और वे द्रौपदी को हस्तिनापुर ले आये।

सुखपूर्वक रहते हुए द्रौपदी को एक पुत्र हुआ। उसका नाम रखा गया पांडुसेन। पांडुसेन यौवनावस्था में आया तब उसका राज्याभिषेक कर पाँचों पांडव और द्रौपदी ने स्थविर मुनि से दीक्षा ग्रहण की।

द्रौपदी ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक संयम पाला। एक मास के संथारे में काल कर वह ब्रह्मलोक नामक पाँचवें देवलोक में उत्पन्न हुई। वहाँ से च्यवकर द्रौपदी का जीव महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा और सिद्धि प्राप्त करेगा।

उपसंहार

साधना के बल पर निदान (नियाणा) करना बुरा है। सुकुमालिका के भव में तप करके भी निदान करने के कारण निदान से मुक्तता नहीं मिली। अपने को अप्रिय लगने वाली वस्तु का दान सुपात्र को देना भी अपराध है, जैसे नागश्री ने तुम्बे का आहार धर्मरुचि को बहराया।

◇◆◇

आकीर्ण जाति के घोड़े

हस्तिशीर्ष नामक नगर का राजा कनककेतु था। नगर में अनेक व्यापारी बसते थे, जिनका जहाजों द्वारा विदेश से व्यापार होता था। समय-समय पर वे अपने जहाजों का समूह विदेश ले जाते थे।

एक बार कई व्यापारी एकत्रित हुए। व्यापार की चर्चा चली। तय हुआ कि लवणसमुद्र के मार्ग से व्यापारार्थ वे विदेश जायें। उन्होंने विक्रय योग्य माल से अपने जहाज भरे और वे निकल पड़े। समुद्र के बीचो-बीच सारे जहाज आते ही अचानक वातावरण बदल गया। तूफानी हवा बहने लगी। आँधी आई। चक्रवात पैदा हुआ। समुद्र की लहरें आसमान को छूने लगी। जहाज तो पानी के ऊपर इस तरह झूलने लगे मानो अभी डूबे, अभी डूबे। बिजलियाँ चमकने लगीं। मूसलाधार वर्षा शुरू हुई। कुदरत के तांडव-नृत्य का नजारा दिखाई देने लगा।

सभी व्यापारी भयभीत थे। अपने-अपने जहाजों में प्रार्थना करने लगे। योगायोग या पूर्व पुण्याई समझिये, थोड़ी देर बाद आँधी शान्त हुई। निसर्ग पूर्ववत् हुआ। सुबह होते ही जहाजों में बैठे व्यापारियों ने पास में किसी द्वीप का किनारा देखा। जहाज किनारे लगाकर सब व्यापारी उतरे। माथे का एक बड़ा बोझ उतरा। यह कालिक द्वीप था। इस द्वीप में हीरे, पन्ने, सोना, चाँदी की अनेक खदानें थीं। पर्याप्त मात्रा

में उन्हें बटोरकर अपने जहाज भर लिये। बहुत द्रव्यार्जन हुआ। इस द्वीप में उन्होंने यह भी देखा और जाना कि अनेक रंगों के सुन्दर, चपल, वेगवान और बलिष्ठ घोड़े भी यहाँ बड़ी संख्या में हैं। लेकिन यदि ये किसी मनुष्य को देख लेते हैं या मनुष्य की गंध सूँघते हैं तो डर के मारे बहुत दूर बेतहाशा भाग जाते हैं। उन्हें घोड़ों से कोई सरोकार नहीं था। वे अपने घर के लिए लौट पड़े।

हस्तिशीर्ष नगर पहुँचते ही व्यापारियों ने कनककेतु राजा को अनेक बहुमूल्य उपहार दिये। राजा भी प्रसन्न हुआ। राजा ने सभी का एवं समुद्रयात्रा का कुशल-क्षेम व्यक्त करते हुए पूछा-''आप लोगों ने यात्रा में कौनसी अनोखी चीज देखी, कृपया मुझे बतायें।''

व्यापारियों ने कहा-''राजन्! उस कालिक द्वीप में अनोखे घोड़े देखे जो कि अनेक रंगों के थे, वेगवान थे, बलवान थे, लेकिन मनुष्य को देखकर भाग जाते थे। मानो मनुष्य से घृणा करते हों।''

राजा के मन में उन घोड़ों के प्रति आकर्षण पैदा हुआ। उनको प्राप्त करने की लालसा जागी। राजा ने कहा-''तुम कालिक द्वीप दुबारा जाओ। मेरे अनुचर काफी संख्या में तुम्हारे साथ रहेंगे। वे घोड़ों को पकड़ेंगे। तुम सिर्फ उन्हें घोड़े दिखा देना।''

राजाज्ञा थी। व्यापारी मना कैसे करते ? राज्य के कर्मचारी और व्यापारियों की फिर से समुद्र यात्रा शुरू हुई। कालिक द्वीप पहुँचे। उन्हें देखते ही घोड़े भाग गये। तब कर्मचारियों ने कुछ सुगंधित और मादक

पदार्थों के झोले हाथ में लिये। वे पदार्थ घोड़ों के आगे फेंकते। कई घोड़े तो भाग जाते। लेकिन जो सुगन्ध में लुब्ध होते, वे पदार्थ खाते और धीरे-धीरे नशा छा जाने से उनके पैर अवरुद्ध हो जाते, वे भाग नहीं पाते। कर्मचारी उनके गले में रस्सी के फंदे फेंककर उन्हें अपने वश में कर लेते।

घोड़ों को लेकर सभी अपने शहर हस्तिशीर्ष पहुँचे। राजा को घोड़े भेंट किये। राजा ने अश्वविद्या का शिक्षक नियुक्त किया। वह बार-बार घोड़ों के पैरों पर डण्डे से मारता, पीठ पर चाबुक से पीटता, कष्ट देता। घोड़े बहुत दुःखी हुए, उन्होंने अपनी आजादी खो दी।

उपसंहार

साधु-धर्म, कालिक द्वीप के समान है। द्वीप का आश्रय पाकर संसार समुद्र में दुःखी प्राणी सान्त्वना और शरण पाते हैं। साधु, अश्वों के समान है। जो साधु पंचेन्द्रिय के विषयों में लुब्ध न होकर उनसे दूर रहते हैं, वे सुख पाते हैं। जो लुब्ध होते हैं, विषय-लोलुप बन जाते हैं, वे बन्धनों कों प्राप्त होते हैं।

कालिक द्वीप से अन्यत्र गये अश्व दुःखी हुए। साधु-धर्म से भ्रष्ट साधु दुःख के पात्र बन जाते हैं।

पाँचों इन्द्रियों के विषयों में लुब्ध होना ही भवभ्रमण का कारण है। इन्द्रियों पर विजय पाने से ही मुक्ति प्राप्त होती है। प्रकाश का

लोलुप पतंगा रूपासक्त होता है। वह दीपक की लौ पर गिरकर अपने प्राणों से हाथ धो बैठता है, वैसे ही रूप में आसक्त जीव अपना अहित करते हैं।

हिरन की राग में अनुरक्ति होती है। उसे पकड़ने के लिए शिकारी मधुर संगीत का प्रबन्ध कर अपने जाल में हिरन को पकड़ता है और वह हिरन भी अपने प्राण खो बैठता है। नागदमनी की गंध के वशीभूत होकर सर्प भी अपने बिलों से बाहर निकलते हैं और मारे जाते हैं। स्वाद में मछली आसक्त रहती है। मच्छीमार लोग मच्छी पकड़ने के लिए काँटे में आटा अटकाकर पानी में काँटा डाल देते हैं। उसके लालच में मछली उस तरफ आती है और काँटे में फँस जाती है।

ये एक इन्द्रिय में लुब्ध जीवों के दृष्टान्त हैं। जो जीव पाँचों इन्द्रियों में लुब्ध हैं, उनके क्या हाल होंगे ?

◇◆◇

सुंसुमा

राजगृही नगरी में धन्ना सार्थवाह नाम का एक श्रीमंत रहता था। उसे धन, धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित नाम के पाँच पुत्र और उनसे छोटी सुंसुमा नाम की एक पुत्री थी।

धन्ना सेठ के यहाँ चिलात नाम का एक नौकर था। चिलात ने कुसंगति में पड़कर छोटी-छोटी चोरियाँ करनी शुरू कर दी। वह अड़ौस-पड़ौस के गली मुहल्ले के लड़कों के कपड़े, खिलौने, पैसे, वस्तुएँ आदि चुराने लगा। उसकी यह आदत बढ़ती गयी। बाद में वह धन्ना के घर भी चोरियाँ करने लगा। मुहल्ले के लोग आकर धन्ना सार्थवाह से उसकी शिकायतें करते। धन्ना उसे डाँटता-फटकारता परन्तु चिलात की आदत में कोई परिवर्तन नहीं आया। आखिर धन्ना ने उसे अपने घर से निकाल दिया।

अब तो उसे कोई रोकने वाला नहीं था, टोकने वाला नहीं था। उस पर किसी का अंकुश या डर ही न रहा। थोड़े ही समय में वह चौर्यकला में निष्णात बन गया। वह जुआघरों में या वेश्यालयों में पड़ा रहता।

राजगृही से कुछ ही दूर सिंहगुफा नाम की चोरपल्ली थी। जिसमें 500 चोर रहते थे। जिसका सरदार विजय चोर था। इस गुफा की यह

खासियत थी कि इसमें भीतर जाने का रास्ता एक था लेकिन भागने के गुप्त रास्ते अनेक थे। जानकार आदमी ही उसमें प्रवेश कर सकता था या निकल सकता था। चोरों की जानकारी चोरों को होती ही है। चिलात भी चोरपल्ली जाकर विजय चोर के गिरोह में शामिल हो गया। विजय चोर कालधर्म को प्राप्त हुआ तब सभी गिरोह ने चिलात को अपना सरदार बना लिया।

धन्ना सार्थवाह ने चिलात की भर्त्सना करके उसे अपने घर से निकाल दिया था, तब से वह अपमान का बदला लेकर धन्ना को सबक सिखाने का मौका ताक ही रहा था। चिलात के सरदार बनने से मौका हाथ आया। उसने अपने सारे साथियों को बुलाया और धन्ना सार्थवाह के घर डकैती डालने की योजना बनाई। उसने कहा–''धन्ना राजगृही का मालदार सेठ है। उसके घर विपुल संपत्ति है। हम सब मिलकर उसके घर धावा बोल देंगे। जो भी द्रव्य हाथ आयेगा वह सारा का सारा आप लोगों का लेकिन उसकी लड़की सुंसुमा, वह मेरी होगी।''

आधी रात को सब एक साथ धन्ना सार्थवाह के घर पर टूट पड़े। धन्ना सार्थवाह कहीं जा छुपे। सारा घर बटोरकर लूट लिया गया। एक कमरे में सुंसुमा थी, उसका भी अपहरण कर लिया। सब लौट गये, शान्ति हुई, धन्ना और उसके पुत्र घर लौट आये। सुंसुमा को न पाकर उसके अपहरण से वे चिन्तित हुए।

वे तुरन्त नगररक्षक कोतवाल के पास गये। सारा हाल सुनाया और कहा–''चोरी गया द्रव्य जो भी बरामद होगा, भले ही आप ले लें लेकिन मेरी पुत्री सुंसुमा हमें प्राप्त करा दीजिये। नगर कोतवाल ने अपने साथ सशस्त्र सैनिक लिये। खोज शुरू हुई। चोरपल्ली को सैनिकों ने घेर लिया। कुछ चोर पकड़े गये। कई भाग निकलने में सफल हुए। चिलात भी सुंसुमा को लेकर गुप्त द्वार से भागा, परन्तु एक सैनिक की नजर पड़ गयी। उसने आवाज दी तो और सैनिक आ गये। आगे सुंसुमा को अपने कंधे पर लिये चिलात चोर भाग रहा था। बहुत सारे सैनिक उसका पीछा कर रहे थे। बोझ लेकर कब तक भागता ? खुद की जान बचाना जरूरी था। उसने सुंसुमा का गला तलवार से काट दिया और उसके गहने लेकर भाग निकला। घने जंगल में गायब हो गया।

सैनिकों के पीछे धन्ना और उसके पाँचों पुत्र भी दौड़ रहे थे। उन्होंने यह दृश्य देखा तो वे एकदम हतबल हो गये। वे लाश के पास आकर बैठे। लाश की हालत देखकर मूर्च्छित हो गये। होश में आने पर अपने पर आये हुए संकट पर दो आँसू बहाए और कर्मों को दोष देने लगे।

इस लगातार और लम्बे समय की भागदौड़ के कारण पिता–पुत्रों को खूब भूख लगी थी। प्यास से भी उनके कंठ सूख रहे थे। राजगृही लौटना भी जरूरी था। क्योंकि सारा घर बिखरा हुआ था। नजदीक या आस–पास फल या खाद्य वस्तु या पानी कहीं दृष्टिपथ में नहीं आ रहा था।

इधर-उधर से लकड़ियाँ इकट्ठी की। घर्षण से अग्नि प्रकट की। आहार पकाया। आहार किया और वे जल्दी ही राजगृही लौट आये। सुख से रहने लगे।

एक बार भगवान महावीर राजगृही पधारे। धन्ना सार्थवाह ने प्रवचन सुना, वैराग्य हुआ, दीक्षा ली और एक माह के अनशन से देह त्याग कर प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुए। वहाँ से च्यवकर वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और उसी भव से मोक्ष प्राप्त करेगा।

उपसंहार

जैसे चिलात चोर विषय-विकारों में लुब्ध होकर सुंसुमा को ले भागा। अन्त में दु:खी हुआ। जंगल में भटकता रहा। इसी तरह जो विषयों में लुब्ध होते हैं, वे संसारभ्रमण करते हैं।

◇◆◇

पुंडरीक-कंडरीक

पूर्व महाविदेह क्षेत्र में पुंडरिकिणी नाम की नगरी थी। वहाँ का राजा महापद्म और रानी पद्मावती थी। उनके दो पुत्र थे। बड़े का नाम पुंडरीक और छोटे का नाम कंडरीक था।

एक दिन धर्मघोष नाम के एक स्थविर महात्मा नगरी में पधारे। राजा महापद्म ने प्रवचन सुना, वैराग्य उत्पन्न हुआ। उन्हें संसार की बातें निस्सार महसूस होने लगी, बड़े पुत्र पुंडरीक को राजगद्दी पर बिठाया, छोटे को युवराज पद दिया और दीक्षित हो गये और वहाँ से विहार कर दिया।

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए धर्मघोष मुनि दुबारा इस नगरी में आये। तब उनका वैराग्यमय उपदेश सुनकर पुंडरीक ने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये और कंडरीक ने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

कंडरीक ने दीक्षा तो ले ली, परन्तु साधुजीवन में आने वाले परिषहों को सहने की शक्ति वह जुटा नहीं पाया। राजघराने में पैदा हुआ, ऐशो आराम से रहा, राजपिंड प्रतिदिन खाया, उसे साधु-जीवन का लूखा, सूखा, नीरस आहार रास न आया। वह मन ही मन कुढ़ने लगा। अनेक रोगों ने आ घेरा। दाहज्वर के कारण उसका शरीर अत्यन्त क्षीण और निस्तेज हो गया। विहार करते हुए सन्त पुंडरिकिणी नगरी के पास कहीं आये। राजा पुंडरीक को खबर पड़ी तो मुनियों के दर्शनार्थ आया। उसने कंडरीक मुनि की हालत देखी और स्थविराचार्य के पास गया, वन्दन किया और नम्रता से बोला-"गुरुदेव! मेरे संसार पक्ष के लघुभ्राता कंडरीक मुनि का स्वास्थ्य काफी गिरा हुआ है। यदि

आप आज्ञा दें तो मैं उन्हें अपनी नगरी में ले जाऊँ और दानशाला में ठहराकर कुशल वैद्यों द्वारा साधु को कल्पनीय ऐसी चिकित्सा और इलाज करवाऊँ कि वे स्वस्थ होकर निराबाध साधना में रत रहें।''

गुरुदेव ने आज्ञा प्रदान की। पुंडरीक राजा कंडरीक मुनि को लेकर नगरी में आया। दानशाला में ठहराया। कुशल वैद्यों द्वारा उनकी चिकित्सा चलती रही। वे चन्द ही दिनों में स्वस्थ हो गये।

यहाँ नौकर-चाकर सेवा करते थे, बढ़िया खाना मिलता था, सुख-सुविधाओं को छोड़कर पुनश्च विहारादि कष्टों में पड़ने की मुनिवर को इच्छा नहीं हुई। उन्हें दीक्षा लेने का पश्चात्ताप होने लगा। वह साधु-जीवन त्यागकर गृहस्थ जीवन में जाने का विचार करने लगे। बातचीत में कभी ऐसी कोई बात निकल जाती जो नौकरों के कानों पर पड़ती। नौकरों ने पुंडरीक राजा को इसकी सूचना दी।

राजा पुंडरीक स्वयं मुनि कंडरीक के पास आया। मुनि को वंदन किया और कहने लगा-''मुनिवर! आपको धन्य है जो आपने दीक्षा ली, भौतिक सुखों की ओर से मुँह मोड़ लिया। मैं अभागा हूँ, दीक्षा लेने की हिम्मत जुटा नहीं पाया।''

यह सुनकर भी कंडरीक मुनि मौन रहे, कुछ बोले नहीं। विचारमग्न दिखाई दिये। चेहरे पर नाराजी के भाव थे। इसलिये राजा पुंडरीक ने कहा-''मुनिवर! आप बोल नहीं रहे। क्या आपको मुनि-जीवन पसन्द नहीं ? क्या आप त्याग को छोड़कर भोगों की इच्छा कर रहे हैं ?''

मुनि कंडरीक ने जवाब दिया-''हाँ ! इस मुनि जीवन के कष्टों को सहन करना मेरे बस की बात नहीं। मैं नहीं सह सकता। सांसारिक भोगों की इच्छा मुझे लगातार सता रही है। भोग-भावना प्रबल हो रही है। मेरी मन की शान्ति भङ्ग हो गयी है। हो सके तो उसके लिए प्रबन्ध करो।''

राजा पुण्डरीक ने अपने मन्त्री, दरबारियों को बुलाया। तुरन्त कंडरीक का राज्याभिषेक करने की आज्ञा दी। कंडरीक को राजगद्दी पर बैठाया। उसके बाद पुंडरीक ने स्वयं अपने हाथों से पंचमुष्टि लोच किया। दीक्षा पाठ पढ़ा। जैन भागवती दीक्षा ली। अभिग्रह किया कि जब तक स्थविर धर्मघोष मुनि के दर्शन नहीं करूँ तब तक संयम-यात्रा पर चलते हुए, आहार-पानी ग्रहण नहीं करूँगा। जनपद में विचरते हुए, धर्मघोष मुनि भी मिले। उन्होंने पुंडरीक मुनि की सराहना की क्योंकि शासन की प्रभावना के लिए उन्होंने उचित कार्य था।

मुनि पुंडरीक को भी वही लूखा, सूखा, नीरस भोजन मिला। परन्तु उन्होंने समता भाव से उसे ग्रहण किया। मुनि-धर्म का कठोर पालन किया। अंत समय संलेखना व्रत को धारण कर, इस नश्वर शरीर का त्याग कर सर्वार्थसिद्ध विमान में 33 सागर की आयु वाले देव रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ से च्यवकर वे महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे और उसी भव में मोक्ष प्राप्त करेंगे।

उपसंहार

भगवान महावीर कहते हैं, जो साधु कंडरीक की तरह विषय-भोगों में लुब्ध होते हैं, वे भवभ्रमण करते हैं। जो पुंडरीक की तरह लुब्ध नहीं होते, समताभाव से रहते हैं, वे मोक्ष-लक्ष्मी का वरण करते हैं।

जो साधु चिरकाल तक उग्र संयम का पालन करके अन्त में प्रतिपाती हो जाते हैं, संयम से भ्रष्ट हो जाते हैं, वे कंडरीक की तरह दु:खी होते हैं। जो अन्तिम श्वास तक संयम का पालन करते हैं, वे पुंडरीक की तरह अल्पकाल में सिद्धि प्राप्त करते हैं।

◇◆◇

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के विविध सेवा सोपान

जिनवाणी हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन

जैन इतिहास, आगम एवं अन्य सत्साहित्य का प्रकाशन

अखिल भारतीय स्तर पर जैन विद्वत्संगोष्ठियों का आयोजन

श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण संस्थान का सञ्चालन

आचार्यश्री हस्ती स्मृति व्याख्यान-माला का आयोजन

उक्त प्रवृत्तियों में दानी एवं प्रबुद्ध चिन्तकों के रचनात्मक सक्रिय सहयोग की अपेक्षा है।

सम्पर्क सूत्र

मन्त्री-सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

सुबोध बॉयज सीनियर सैकेण्डरी विद्यालय के ऊपर,
बापू बाजार, जयपुर-302003 (राजस्थान)
दूरभाष : 0141-2575997
Email : sgpmandal@yahoo.in